हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का आदर्श

श्री नाथू राम

लेखक का परिचय

लेखक एक हिंदू चिंतक तथा विचारक है, पंजाब के निवासी हैं। आपको ज्ञान तथा कला में विशेष रुचि है। अपने जीवन का एक भाग मध्यपूर्व के इस्लामी संस्कृति के गढ़ में बिताने के कारण आपको उसे निकट से देखने-समझने का अवसर मिला है, इसीलिए इस्लाम की विशेष जानकारी रखने वालों में उनकी गणना होती है। आपकी एक और पुस्तक 'इस्लाम और औरत' भी है, जो अति लोकप्रिय है।

पुस्तक लेख 'दयामूर्ति का रवैया अपने शत्रुओं के साथ' के शीर्षक से पहले लेखमाला के रूप में 'फ़ारान' उर्दू मासिक, कराची में प्रकाशित हुआ था। उन्हीं लेखों के इस संग्रह को बाद में पुस्तक रूप दिया गया, जिसका अनुवाद इस समय आपके हाथों में है।

धर्मप्रधान व्यक्तियों तथा जातियों का एक-दूसरे से भ्रातृत्व संबंध होना अत्यावश्यक है, मुख्य रूप से देश-हित में तो ऐसा होना अनिवार्य समझा जाता है। धर्मों के बारे में पायी जाने वाली ग़लत-फ़हमियों का निवारण तो होना ही चाहिए। ज़रूरत इस बात की भी है कि धर्मों का निष्पक्ष भाव से अध्ययन-मनन किया जाए। यही भाव लेकर श्री नाथूराम ने यह लेख-माला प्रस्तुत की और इसी भाव के साथ हम इसे प्रकाशित करने में गर्व का अनुभव कर रहे हैं।

आशा है इस प्रकार धर्मों का अध्ययन करने के लिए द्वार खुलेंगे और साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने का सुगम वातावरण बनेगा।

—प्रकाशक

बिस्मिल्लाहहिर्रहमानिर्रहीम

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का आदर्श

आज जब हम पैग़म्बरों की जीवनी तथा उनकी शिक्षाओं का अध्ययन करते हैं, तो हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि इन मेहरबान पैग़म्बरों का विरोध लोगों ने क्यों किया? सच्ची बातों पर आधारित उनकी शिक्षाओं को देशवासियों ने क्यों न स्वीकार कर लिया? हर एक नबी का उनके अपने काल में विरोध किया गया, उनका उपहास किया गया, हर प्रकार के अत्याचार उन पर किये गये और उनमें से अधिकांश को अपने ही लोगों के विरोध तथा अत्याचार के कारण देश-परित्याग पर विवश होना पड़ा और विदेश-प्रवास की ही स्थिति में वे अपने रचयिता तथा स्वामी से, प्राण-त्याग कर जा मिले। क़ुरआन इसी स्थिति का उल्लेख एक सामान्य नियम के रूप में इस प्रकार करता है—

'कोई भी रसूल उनके पास ऐसा नहीं आया, जिसका उपहास न किया गया हो।'

इसी सत्य की ओर वर्क़ा बिन नोफ़ल ने संकेत किया था। वह्य के आरम्भ में हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) प्यारे नबी (सल्ल०) को वर्क़ा के पास ले गयीं, तो उन्होंने फ़रमाया कि, 'यह क़ौम तुम्हें झुठलाएगी, तुम पर अत्याचार करेगी, देश से निकाल देगी और तुम से लड़ाई करेगी। (इब्ने हिशाम, भाग १, पृ० २५६)

और आगे वर्क़ा बिन नोफ़ल कहते हैं कि काश उस समय मैं मौजूद होता जब कि आप की क़ौम आपको वतन से निकाल बाहर करेगी।

ऐसा सुन कर प्यारे नबी (सल्ल०) ने आश्चर्य से कहा, 'क्या

मेरी क़ौम मुझे अपने वतन से निकाल देगी ?'

वर्क़ा ने उत्तर दिया, 'आप जिस चीज़ (नुबूवत) को लेकर आए हैं, उसे ले आने वाला हर व्यक्ति अत्याचार का शिकार हुआ है।'

—बुख़ारी

ऐसा क्यों होता है ?

हर युग की स्थिति एक जैसी नहीं होती, विभिन्न जातियों के रस्म व रिवाज में खुला अन्तर होता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि उनका विरोध किए जाने के कारण भी अनेक रहे होंगे।

हर पैग़म्बर के विरोध के कारणों का पता लगाना आज हमारे लिए कठिन है। वैसे यह बात याद रखने की है कि नबियों पर अत्याचार किये जाने के कारण भी अनेक हैं, लेकिन आपके विरोधियों के हालात का सही ज्ञान हो जाए तो विभिन्न पैग़म्बरों पर किए गए अत्याचारों के कारणों के समझने में कठिनाई न होगी, इसीलिए सबसे पहले हम प्यारे नबी (सल्ल०) के दुश्मनों के हालात और आप से उनके मामलों का सविस्तार अध्ययन करेंगे।

विरोध करने वाले लोग

तीन वर्गों ने प्यारे नबी (सल्ल०) का विरोध किया था—

१. मुश्रिक (अनेकेश्वरवादी), २. यहूदी, ३. मुनाफ़िक़ (कपटाचारी)। इन तीनों वर्गों के विरोध के कारण भिन्न-भिन्न थे और इनके तरीक़े भी अलग-अलग थे।

मुश्रिक

अरब के मूल निवासी मुश्रिक ही थे। यहूदी, ईसाई और अपनी अन्तरात्मा की पुकार पर 'सत्य-धर्म' के खोजी व्यक्तियों के अतिरिक्त तमाम अरबवासी अनीश्वरवादी कदापि न थे, बल्कि

तौहीद (एकेश्वरवाद) की कल्पना उनके यहां थी। प्राचीन अरबों में 'अल्लाह' शब्द का प्रयोग इसी का प्रमाण है। अरब इस शब्द का प्रयोग वास्तविक रचयिता के मूल 'नाम' के रूप में ही करते थे, लेकिन इस विश्वास का उनके दैनिक जीवन पर कोई प्रभाव न था।

एकेश्वरवाद की कल्पना मन में होने के बाद भी वे मूर्तियों को पूजते थे, उन्हें अपना उपास्य तथा संरक्षक स्वीकारते थे। आश्चर्य तो इस पर है कि विशुद्ध 'अल्लाह' के नाम पर की जाने वाली इबादत भी किसी न किसी मूर्ति के माध्यम से अदा की जाती थी, जैसे हज़रत अब्दुल मुत्तलिब ने मन्नत मानी थी कि वह अपने एक बेटे को अल्लाह के नाम पर बलि देंगे और जब बलि देने का समय आया तो अपने सबसे छोटे बेटे अब्दुल्लाह (हुज़ूर के पिता) को काबा के सबसे बड़े बुत हुबल के पास ले गए।

(इब्ने हिशाम, भाग १, पृ० १६०-६४)

जब उनसे पूछा गया कि तुम ऐसा क्यों करते हो? इन मूर्तियों के पास तुम्हारी रक्षा करने या तुमको सज़ा देने की कोई शक्ति नहीं है, तो उनका उत्तर इस प्रकार था—

'हम उनकी पूजा केवल अल्लाह तक पहुंचने के लिए करते हैं।'

इसी तरह तमाम मुश्रिक अपनी मूर्ति-पूजा का यही कारण बताया करते थे और प्रायः आज तक यही कहा जा रहा है।

नबी (सल्ल०) पर उतरने वाली पहली वह्य ही में इस बात को स्पष्ट कर दिया गया था कि अल्लाह एक है और वही सृष्टि का स्रष्टा है। इन्सान अज्ञानी तथा बेआसरा है। वह्य मानव-ज्ञान का स्रोत है। (सूरः अलक़)

लेकिन तीन वर्ष तक इस सच्चाई को खुल कर नहीं प्रसारित किया गया, बल्कि पूर्ण सावधानी के साथ, केवल विश्वास-पात्रों तक ही इसे सीमित रखा गया। आखिर कब तक यह बात छिपायी जाती? तीन वर्ष बाद आदेश मिला कि—

'प्रसारित करो, जो कुछ कहा जाता है।'

'और डराओ अपने निकटवर्तियों को।'

इसके बाद हुज़ूर (सल्ल०) ने खुले आम अपना सन्देश प्रसारित करना आरम्भ किया।

(इब्ने हिशाम, भाग १, पृ० २८०-८१, तब्री भाग ३, पृ० ११६)

इस्लाम की मौलिक शिक्षाएं

इस आरंभिक युग की शिक्षाओं को इस प्रकार संक्षेप में लिखा जा सकता है—

१. वास्तविक उपास्य केवल अल्लाह की ज़ात है।

(क) अल्लाह एक है, हर एक का पैदा करने वाला और पालने वाला है। अल्लाह को नज़रंदाज़ करने वाला इन्सान ज़ालिम और बाग़ी है। वास्तव में इन्सान को उसी की तरफ़ लौटना है।

(ख) अगर अल्लाह का इन्कार किया जाता है तो इन्कारियों को सोचना चाहिए कि धरती तथा आकाश की रचना कैसे हुई? पहाड़ किस प्रकार जम गये, आकाश से वर्षा किस प्रकार होती है?

(ग) उनको खाना कहां से मिलता है? आसमान से वर्षा बरसाने वाला अल्लाह है। वही धरती से खाने की चीज़ें पैदा करता है। फिर ये मुश्रिक अल्लाह की ना-शुक्री करके बुतों की पूजा क्यों करते हैं।

(घ) अल्लाह ने उन्हें पैदा किया, हरियाली उसने पैदा की, और तमाम काम उसके हुक्म से होते हैं। सत्कर्म करने और अल्लाह को सर्वोच्च मान कर उसकी भक्ति करने वालों को ही सफलता मिलेगी।

(ङ) अल्लाह ने इंसान को आंखें दीं कि सत्य-असत्य को पहचान सके। क्या इन्सान नहीं देखता है कि मूर्तियां न उसको फ़ायदा पहुंचा सकती हैं और न नुक़सान पहुंचा सकती हैं? अगर ख़ुद को न मालूम हो तो दूसरे से पूछ कर सच्चाई मालूम करने के लिए अल्लाह ने उसे जीभ दी है।

२. यतीमों तथा ज़रूरतमन्दों की सहायता करो—

(च) अल्लाह उन लोगों की सहायता करता और उन पर अपनी कृपादृष्टि करता है, जो दान करते और अल्लाह से डरते हैं। इसके विपरीत कंजूसी करने और अल्लाह की नेमतों पर ना-शुक्री करने वालों के जीवन को अल्लाह कठिन बना देता है और आख़िरत में उनका धन उसके काम न आ सकेगा।

(छ) दूसरों को आरोपित करने और धन एकत्र करने पर तुले हुए लोगों पर धिक्कार है। क्यों वे यह समझते हैं कि उनकी दौलत सदैव बनी रहेगी? वास्तव में वे तबाही की ओर बढ़ रहे हैं, जिससे उन्हें कोई न बचा सकेगा।

(ज) तुम यतीमों का सत्कार नहीं करते, निर्धनों को खाना नहीं देते, जो कुछ मिलता है स्वयं खाकर मौज उड़ाते हो, धन एकत्र करते हो। आख़िरत के दिन ही तुम्हें समझ आएगी, जब जहन्नम तुम्हें निगलने के लिए मुंह खोले हुए होगी, लेकिन हाथ मलने के सिवा कुछ न मिलेगा।

(झ) अल्लाह का इन्कार करने और ग़रीबों को खाना न खिलाने वालों का उस दिन (क़ियामत) कोई सहायक न होगा। जहन्नम उनके रहने की जगह बनेगी।

आख़िरत तथा पूछ-ताछ का दिन सच है—

(ञ) उन्हें बता दीजिए कि वे हमारी ओर (अल्लाह की ओर) लौट कर आएंगे और उन्हें अपने कर्मों का हिसाब देना होगा। काफ़िर (इन्कार करने वाले) उस दिन अत्यधिक कष्ट सहन करेंगे।

(ट) हमारे पास हाज़िर होने वाले दिन उनके तमाम भेद खुल जाएंगे। उस दिन उनके उपास्य और उनका धन-वैभव उनके कुछ काम न आएगा।

(ठ) आसमान चूरा-चूरा होने वाले उस दिन ये काफ़िर क्या करेंगे?

(ड) आप (मुहम्मद सल्ल०) की ज़िम्मेदारी मात्र उनको

सचेत कर देना है और उन्हें उनके हाल पर छोड़ दीजिए, फिर उन का मामला हम खुद देख लेंगे। मौत के बाद हमारे सामने हाज़िर होने पर सख्त अज़ाब चखने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। इन काफ़िरों से वायदा किया हुआ वह सख्त अज़ाब का दिन निश्चित है वह आकर रहेगा।

यह है नबी (सल्ल०) के आरंभिक युग की वह्य में प्रस्तुत शिक्षाएं। इसमें मुख्य रूप से चार बातों पर ज़ोर दिया गया है—

१. मूर्तियों की पूजा व्यर्थ कार्य है।

२. भक्ति व आज्ञापालन का अधिकारी तो केवल अल्लाह ही है।

३. धन एकत्र करने से बेहतर तो यह है कि उसे यतीम और ग़रीब के लिए खर्च किया जाए।

४. अल्लाह का इन्कार करने वालों का अन्जाम बहुत बुरा होगा।

क़ुरैश का विरोध क्यों ?

ये शिक्षाएं हुज़ूर (सल्ल०) की पैग़म्बरी के समय में क़ुरैश की विचार-धाराओं से पूरी तरह टकराती थीं। हुज़ूर (सल्ल०) के प्रति क़ुरैश के द्वेष पूर्ण विरोध का रहस्य भी यही है। इसके धार्मिक, नैतिक तथा सामाजिक कारण भी हैं।

१. धार्मिक कारण

एक ईश्वर की ओर बुलाने और मूर्तियों का विरोध करने से स्पष्ट था कि उनके पुरखों का खंडन हो रहा था, यही सोच कर मक्का के मुश्रिकों का क्रोध भड़क उठता और कोई तर्क न मिलता तो यही कहते, हमारी मूर्तियों की भर्त्सना की जा रही है, हमें मूर्ख और नरक का ईंधन कहा जा रहा है, बल्कि हमारे पुर्खों तथा बुज़ुर्गों का बुरा चित्र प्रस्तुत किया जा रहा है।

ये थे मुश्रिकों के आरोप ।

अति व्यर्थ तथा निरर्थक बात को भी आसानी से न छोड़ना, यह मनुष्य का सहज स्वभाव है। एक काम यदि निरन्तर दस-बीस वर्ष से किया जा रहा हो, तो फिर क़हना ही क्या। इसे मान्य तथ्य स्वीकार कर लिया जाता है। संसार के तमाम सिद्धान्त तथा क़ानून ग़लत सिद्ध हो सकते हैं, पर जीवन के इस 'मान्य-तथ्य' को ग़लत समझ लेना मनुष्य की समझ से परे है। इसमें किसी भी प्रकार के सन्देह को वह सहन करने के लिए तैयार नहीं।

स्वभावतः यही अरब में हुआ।

दस-बीस वर्ष नहीं, शताब्दियों से अरब मूर्तियों की पूजा करते थे, इसलिए असम्भव न था कि इस नई आवाज़ से उन्हें कष्ट न हो। पर लगता है इस सम्बन्ध में उन्होंने गंभीरता पूर्वक विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी, अधिक से अधिक उन्होंने उपहास करने और 'नवीनता का मज़ाक़ उड़ाने का काम किया।

(तबरी भाग ३, पृ० ११०८)

निर्धन तथा साधनहीन मुसलमान जब मुश्रिकों के क़रीब से गुज़रते, तो वे कहते थे—

'यही हैं जो हम लोगों में अल्लाह का सही ज्ञान रखने वाले हैं।'

लेकिन जब आवाज़ आम हो गयी और उच्च परिवारों के नवयुवकों तथा दासों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया, तो उन्हें महसूस हुआ कि मामला ग़लत है। अब इसे नज़रंदाज़ करने से भारी क्षति पहुंच सकती है, यही सोच कर उन्होंने तीव्र विरोध पर कमर कस ली।

२. नैतिक कारण

क़ुरैश की आजीविका व्यापार पर आश्रित थी। दानशीलता, आतिथ्य-सत्कार, मजबूरों की सहायता आदि यद्यपि उनके लोककथाओं में अधिक महत्व रखते हैं, लेकिन जिस युग का हम उल्लेख

कर रहे हैं, उस समय इन गुणों को क़िस्से-कहानियों से अधिक नहीं जानते थे। पूंजीवाद के तमाम अवगुण उनमें प्रगट होने शुरू हो गए थे। कुछ प्रमुख व्यक्तियों तथा परिवारों में व्यापार द्वारा धन-संग्रह से धार्मिक तथा नैतिक क्षेत्र में पतन और गिरावट आ गयी थी सूदी कारोबार देश के हर भाग में फैल गया था और ज़ुल्म की आंधी चलने लगी थी। ग़रीब व यतीम की सम्पत्ति पर अवैध ढंग से क़ब्ज़ा करने में कोई संकोच न करना, हल्फ़ुलफ़ुज़ूल समझौता वास्तव में इन्हीं परिस्थितियों का परिणाम था।

अल-मस्अदी हल्फ़ुलफ़ुज़ूल के सिलसिले में यूं बयान करता है कि अज्ञानता-काल में एक यमनी व्यापारी ने आस बिन वाइल के हाथ कुछ सामान बेचा। आस ने क़ीमत अदा करने से बचने के लिए हील-हवाले शुरू किए, अन्ततः व्यापारी ने क्रोध में आकर आस की निंदा में एक क़सीदा (निंदा काव्य) लिख कर भेज दिया। उक्त क़सीदा ज़ुबैर बिन अब्दुल मुत्तलिब की नज़र से गुज़रा तो उन्हें इस से बड़ा दुख हुआ। उन्होंने तत्काल बनू हाशिम, बनू मुत्तलिब, असद, ज़ोहरा और तमीम के निष्पक्ष व्यक्तियों को अब्दुल्लाह बिन जद्आन के घर बुला कर हल्फ़ुलफ़ुज़ूल समझौते की नींव रखी। उन्होंने समझौता किया कि हम में से हर एक ज़ालिम के ख़िलाफ़ मज़लूम की सहायता करेगा, चाहे ज़ुल्म करने वाला अपना हो या पराया, उससे हक़ दिलाए बग़ैर शान्त न रहेंगे।

(इब्ने हिशाम, भाग १ पृ० १४१)

साक्ष्यों से पता चलता है कि नबी (सल्ल०) ने भी इस समझौते में शिर्कत की थी। स्वयं प्यारे नबी (सल्ल०) फ़रमाते हैं कि मैं अब्दुल्लाह बिन जद्आन के घर किए जाने वाले समझौते में शरीक था और अगर उसके विरुद्ध चलने के लिए मुझे लाल ऊंट दिया जाए तब भी मैं ख़ुश न हूंगा और अगर कोई मज़्लूम मुझ से सहायता चाहेगा, तो मैं उसकी अवश्य ही सहायता करूंगा।

(इब्ने हिशाम, भाग १, पृ० १४२)

क़ुरैश के नैतिकपतन का इस घटना से भी आभास मिलता है—

जब मुसलमान देश-परित्याग कर हब्शा को चले गये, तो क़ुरैश ने उन्हें वापस लाने के लिए शिष्ट मंडल भेजा। बादशाह ने मुसलमानों को बुला कर उनमें नये धर्म के बारे में पूछा, जिसे वे अपना चुके थे। उनमें से जाफ़र बिन अबी तालिब ने बादशाह के आगे एक वक्तव्य दिया, जिसमें उन्होंने इस्लाम से पहले के अपने जीवन तथा इस्लामी शिक्षाओं की व्याख्या करते हुए कहा कि—

'हम अज्ञानता-अन्धकार में पड़े हुए थे, मूर्तियों को पूजते थे, मुर्दार खाते थे, दुष्कर्म करते थे, अपनों की हत्या करते थे, पड़ोसी का हक़ मारते थे, हममें का शक्तिशाली शक्तिहीनों का दमन करता था, चरित्रहीनता का जीवन हम जी रहे थे कि अल्लाह ने हममें से एक रसूल भेजा, जिनका उच्चवंशीय होना स्पष्ट, जिनकी सत्यप्रियता, दान-शीलता, मान्य, उन्होंने केवल एक ईश्वर की भक्ति तथा आज्ञापालन का आह्वान किया। उन्होंने हमें शिक्षा दी कि हम और हमारे पुरखे, जिन मूर्तियों को पूजते थे, उन्हें हम छोड़ दें, सच बोलें, वायदे निभाएं, लोगों से अच्छा मामला करें, पड़ोसी से सद्-व्यवहार करें, दुष्कार्यों और हत्या से बचें। उन्होंने बुरे कार्य करने, झूठ बोलने से रोका, और पतिव्रता औरतों को आरोपित करने से मना किया।' (इब्ने हिशाम, भाग १, पृ० २५९-६०)

यह है उस युग का वास्तविक चित्र, जब हुज़ूर (सल्ल०) नबी बनाये गये थे, अतएव क़ुरआन ने भूखे को खाना खिलाने और यतीमों के सम्मान करने का सख़्ती से हुक्म दिया, तो कंजूस और यतीमों और दुर्बलों का शोषण करने वाले लोगों के लिए यह बात असह्य थी। उन्होंने देखा कि क़ुरआन की इस शिक्षा से हमारा मान-सम्मान, प्रतिष्ठा धूल-धूसरित हो रही है, बल्कि उन्होंने इस स्वर को, ख़ून-पसीना एक करके कमायी हुई दौलत को समाज के बेकार लोगों में बांट कर स्वयं को निर्धन बना देने वाला, स्वर कहा। इसलिए हम कह सकते हैं कि हुज़ूर के प्रति किया गया

विरोध मात्र धार्मिक कारणों से नहीं है, बल्कि इसके पीछे आर्थिक कारण मौजूद थे।

३. सामाजिक कारण

अरब समाज का निर्माण क़बीलों की बुनियाद पर हुआ था। हर क़बीला एक-एक यूनिट की हैसियत रखता था। क़बीले और उसके व्यक्तियों के कार्य का पूरा क़बीला ज़िम्मेदार होता था। इसी कारण अच्छी और बुरी हालत और दूसरे मामलों में क़बीले के लिए अपनी जान तक क़ुर्बान करने के लिए हर एक तैयार रहता था। क़बीले के स्वार्थ के मुक़ाबले में वे अपने व्यक्तित्व को कोई महत्व न देते थे। उनमें से हर एक मुत्तलिबी, हाशमी या कोई और हो सकता था, पर क़बीले से अलग होकर व्यक्ति का कोई महत्व नहीं होता था। क़बीले के बहुमत के ख़िलाफ़ जाना न केवल निरादर, बल्कि पाप का काम समझा जाता था। क़बीले से विद्रोह करने वाले का अंजाम हमेशा एक ही होता था अर्थात क़बीले से उसको निकाल बाहर किया जाना। फिर वह कहीं दूर निकल जाने पर मजबूर होता था, किसी दूसरे क़बीले की शरण में पहुंच जाता। व्यक्ति की हैसियत समाज में मान्य नहीं थी, उसका अस्तित्व क़बीले के अस्तित्व में विलीन हो जाता था। अगर किसी क़बीले में वह विलीन नहीं तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसकी जान व माल की ज़मानत नहीं है और हर एक के लिए उसका माल छीन लेना और उसका प्राण ले लेना वैध था।

यह नियम मात्र सामाजिक महत्व का न था, बल्कि इसका धार्मिक महत्व भी था। आख़िरत की कोई कल्पना न होने के कारण उनके यहां 'दीन व दुनिया' केवल इतनी थी कि हर हाल में क़बीले और उसके सरदार के आदेश का पालन किया जाए, लेकिन इस्लामी शिक्षाएं इसके बिल्कुल विपरीत हैं। उसके अनुसार हर एक व्यक्ति से उसके निज की पूछ-ताछ होगी और हर एक अपने कार्य का स्वयं

ज़िम्मेदार होगा—

'कोई बोझ उठाने वाला किसी दूसरे का बोझ न उठाएगा।'

अगर कोई व्यक्ति ग़लती करता है तो उसका ज़िम्मेदार वह स्वयं है, न कि उसका परिवार और उसका क़बीला।

मक्का के नव-युवक ज्यों ही इस्लाम स्वीकार करने लगे, वहां के क़बीले के मज़बूत क़िले डोलने से लगे। दूसरे शब्दों में हर क़बीला और हर परिवार को उतने ही व्यक्तियों की क्षति हुई जितने इस्लाम स्वीकार कर चुके थे। अनुभवी बूढ़ों ने अनुमान लगा लिया कि ये नव-युवक अब अपने परिवार के हित में तलवार नहीं उठाएंगे और न ही क़बीले के दुश्मनों से लड़ेंगे।

४. राजनीतिक कारण

इस्लामी आंदोलन के राजनीतिक महत्व को, हो सकता है, पहले ही चरण में, लोगों ने महसूस न किया हो, लेकिन लम्बी मुद्दत तक वह इस भ्रम में पड़े रह भी नहीं सकते थे। उन्होंने जल्द ही समझ लिया कि इस्लाम के ग़लबे का अर्थ अपनी सत्ता, अपनी प्रतिष्ठा, अपने राज्य और अपनी प्रभुता का अन्त! इस्लाम की रस्सी, गले में डालने वाला हर व्यक्ति क़बीला और क़बीले के सरदार को एक तलवार को कम करके इस्लाम के आवाहक हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की तलवार में वृद्धि करता है, इसलिए क़बीले के सरदारों ने समझ लिया कि बिना किसी अवरोध के यदि यह मुक़ाबला जारी रहा तो आज नहीं तो कल, इच्छा से या अनिच्छा के साथ, मुहम्मद (सल्ल०) के आज्ञापालन पर हम स्वतः विवश हो जाएंगे।

मक्का में निवास करने वालों की भारी संख्या क़ुरैशों की थी। यद्यपि इन सब के एक दादा हब बिन मलिक थे, जो क़ुरैश की उपाधि से प्रसिद्ध हुए थे, लेकिन समय के साथ-साथ इनमें आपस के झगड़े उठ खड़े हुए थे। उदाहरण के तौर पर हर्ब के दो बेटे अदी,

मुर्रा थे। उनकी औलाद बनू अदी और बनू मुर्रा आपस में एक दूसरे के दुश्मन थे। मुर्रा की दो औलाद थीं…किलाब और युक़्सा और किलाब के क़ुसई, जुहरा दो बेटे थे और मख्ज़ूम युक़्सा की औलाद थी। बनू जुहरा और बनू क़ुवई एक तरफ़ और बनू मख्ज़ूम दूसरी तरफ़ होकर आपस में लड़-कट रहे थे। क़ुसई बुद्धिमान और सरदार थे। उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता, साहस और सरदारी को काम में लाकर आपस में झगड़ते हुए क़ुरैश को एक पंक्ति में ला खड़ा किया। उसकी सरदारी को तमाम क़ुरैश ने स्वीकार किया। क़ुसई के बाद क़ौम की सरदारी उसके बेटे अब्दे मनाफ़ के हिस्से में आयी। अब्दे मनाफ़ अपने पिता की तरह योग्य और बुद्धिमान था। उसके विरुद्ध विद्रोह करने का किसी में साहस न हुआ, लेकिन उनकी दो सन्तानों हाशिम और अब्दे शम्स की औलादें दोबारा संघर्षरत हो गयीं। बनू अब्द शम्स बनू हाशिम को दबाने की घात में लगे हुए थे। हाशिम का बेटा अब्दुल मुत्तलिब (शैबा) बहुत योग्य था, इस लिए उनकी मृत्यु तक बनू अब्दे शम्स की कोई चाल न चल सकी। लेकिन उनकी मृत्यु के बाद पतन के चिन्ह स्पष्ट दीख पड़ने लगे। बनू हाशिम के बजाए बनू अब्दे शम्स की हर्ब बिन उमय्या क़ौम का सरदार मान लिया गया। अब्दुल मुत्तलिब के बेटे अबू तालिब (हज़रत-अली के पिता, जिनका वास्तविक नाम अब्द मुनाफ़ था) बनू हाशिम के सरदार चुने गये। यद्यपि वह साफ़ और खुले दिल के व्यक्ति थे, लेकिन कम हैसियत और बड़े परिवार का बोझ उठाने वाले थे। इसलिए बनू हाशिम को पहले जैसा स्थान प्राप्त न हो सका। नबी (सल्ल०) इन्हीं अबू तालिब के भतीजे थे। जब तक अब्दुल मुत्तलिब जीवित रहे, इन्होंने इस यतीम पोते (मुहम्मद सल्ल०) को बड़े स्नेह से पाला-पोसा। अतएव अब्दुल मुत्तलिब के देहावसान के बाद हुज़ूर (सल्ल०) का बोझ भी अबू तालिब पर आ पड़ा।

ये थे वे कारण, जिनसे हुज़ूर (सल्ल०) का क़बीलागत संघर्ष

तथा वैमनस्य सामना करना पड़ा।

हुज़ूर (सल्ल०) के सबसे बड़े शत्रु बन कर अबू सुफ़ियान और अबू जहल सामने आए। सुफ़ियान बनू हाशिम के सबसे बड़े शत्रु हर्ब बिन उमय्या बिन अब्दे शम्स का बेटा था। अबू जहल मख़्ज़ूमी का। मुर्रा बिन काब के पोते मख़्ज़ूम की औलाद में से था। मख़्ज़ूम की मृत्यु के बाद इस परिवार की सरदारी वलीद बिन मुग़ीरा (इस्लामी सेनाओं के मान्य सेनापति ख़ालिद बिन वलीद के पिता) हिस्से में आयी। वलीद की मृत्यु के बाद बनू मख़्ज़ूम की सरदारी वलीद के भतीजे अबू जहल को मिली। वलीद बुज़ुर्ग और अपेक्षतः सज्जन था। जब कि अबू जहल नव-जवान, भावुक, पाषाण हृदयी और किसी को भी न क्षमा करने वाला था। उसका मूल नाम अम्र और उपाधि अबू जहल थी। उसकी योग्यता तथा दूरदर्शिता सर्वमान्य थी। मक्का की लोकतंत्री संसद (दारुन्नदवः) के नियमानुसार उसका सदस्य चालीस वर्ष से कम का कोई व्यक्ति न हो सकता था, लेकिन मक्का वालों ने अम्र बिन हिशाम (अबू जहल) को तीस वर्ष की आयु ही में दारुन्नदवः का सदस्य चुना, जिससे अबू जहल की दूदर्शिता और बुद्धिमत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। बनू मख़्ज़ूम एक लम्बे समय से क़ुरैश से दुश्मनी रखते थे, लेकिन कुसई, अब्दे मुनाफ़, हाशिम और अब्दुल मुत्तलिब के युग में कोई-कोई खुला विरोध न कर सके थे। अब्दुल मुत्तलिब की मृत्यु के बाद बनू हाशिम कमज़ोर हो गये और बनू मख़्ज़ूम अपनी सरदारी के सपने देखने लगे।

क़ौम की सरदारी चाहने वाले किसी भी व्यक्ति का दानी, आतिथ्य-सत्कार करने वाला और खुले दिल का होना उस समय आवश्यक समझा जाता था। हर वर्ष, हर मौक़े पर, हर क्षेत्र के लोग मक्का में जमा होते थे। लोगों में अपना प्रभाव चाहने वाला हर एक व्यक्ति उन दिनों में अपनी दानशीलता और आतिथ्य

सत्कार में दूसरों पर बाज़ी ले जाने की कोशिश करते थे। ये मेह-मान लौट कर अपने क्षेत्रों में जाते तो अपने उपकारी की प्रशंसा करते, कवि उसकी प्रशंसा में कविताएं लिखते, तीर्थ-यात्री उसकी दानशीलता, उसके आतिथ्य सत्कार के अनोखे-अनोखे क़िस्से मशहूर कराते। व्यापारी उसके गुणगान करते न अघाते। इस प्रकार उस व्यक्ति की ख्याति देश के कोने-कोने में फैल जाती।

बनू मख़्ज़ूम क़ुरैश की सरदारी प्राप्त करने की अत्याधिक कोशिश कर रहे थे, लेकिन हर्ब बिन उमैया की योग्यता तथा क्षमता के आगे उनको अपनी सफलता में सन्देह होने लगा, पर हर्ब के बाद उसके बेटे अबू सुफ़ियान यद्यपि बनू मख़्ज़ूम का सरदार चुन लिया गया, लेकिन उसमें अपने पिता जैसी बुद्धिमत्ता तथा योग्यता न थी, इसलिए दूसरे बनू मख़्ज़ूम अबू सुफ़ियान से आगे बढ़ गये। पहले वलीद बिन मुग़ीरा और बाद में अबू जहल क़ुरैश के सरदार माने गये।

प्यारे नबी सल्ल० ने जब नुबूवत का दावा किया तो किसी ने अबू जहल से इस तरह प्रश्न किया—

'अबुल रक़म ! मुहम्मद (सल्ल०) क्या कुछ दावा कर रहा है, क्या तूने सुना नहीं ? इस सम्बन्ध में तुम्हारा क्या विचार है ?'

इस प्रश्न के उत्तर में अबू जुहल ने जो कुछ कहा, उसमें पारि-वारिक विद्वेष की झलक आसानी से देखी जा सकती है। वह कहता है—

'मित्र ! सुनने के लिए क्या है ? हमने बनू अब्दे मुनाफ़ से हर उच्च पद प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया। जब उन्होंने आतिथ्य-सत्कार किया, हमने भी किया, उन्होंने कमज़ोरों की सहायता की, तो हमने भी की। उन्होंने लोगों का बोझ उठाया तो हमने भी उठाया सौर इस तरह के मुक़ाबले में हमारे बाज़ू उनके बाज़ू से जा लगे (हम उनसे आगे जाने वाले थे) कि देखो, उन्होंने एक नया रास्ता निकाला है। उन्होंने दावा किया कि हम में नबी पैदा हो

गया है, जिसको आसमान से वह्य मिलती है। इस प्रकार की चीज़ हम नहीं जानते। अल्लाह की क़सम ! हम उस पर कभी ईमान न लाएंगे और न उसकी बात मानेंगे।'

(इब्ने हिशाम, भाग १, पृ० ३३७-३८)

अर्थात अबू जहल के विचार से बनू अब्द मुनाफ़ का एक व्यक्ति इस नुबूवत के दावे से अपने क़बीले के पद को बहाल करना और शत्रु क़बीले के पद को गिराना चाहता है। इस प्रकार वह किसी हालत में उस नबी पर ईमान नहीं ला सकता ?

तात्पर्य यह कि हुज़ूर (सल्ल०) के विरोध के पीछे उपरोक्त तमाम कारण कार्य कर रहे थे। लोगों ने हुज़ूर (सल्ल०) का विरोध धार्मिक ढंग का ही जारी रखा कि यह मूर्ति की निन्दा करता है, पुरखों को गुमराह और जहन्नमी कहता है। स्वार्थियों ने हुज़ूर (सल्ल०) का विरोध शुरू किया कि उनके अत्याचार तथा शोषण को हुज़ूर (सल्ल०) ने बुरा कहा और कमज़ोरों की सहायता तथा दान-पुण्य को उभारा। अपनी प्रतिष्ठा तथा मान-सम्मान के समाप्त होने के भय से वे लोग हुज़ूर के विरोधी बन गये, अपने दुश्मन बनू हाशिम के एक नव-युवक के सामने सिर झुकाने की भावना ने भी विरोध करने पर उकसाया।

(इसके अतिरिक्त भी कुछ कारणों का उल्लेख अल्लामा शिबली ने अपनी पुस्तक 'सीरतुन्नबी' के प्रथम भाग पृ० २१२-१४ पर किया है, लेकिन वास्तव में वे सब बाद ही में पैदा हुए थे। आरम्भ में उपरोक्त कारण ही विरोध के कारण बने।)

क़ुरैश के प्रतिनिधि अबू तालिब के सामने समय-समय पर इन दलीलों को प्रस्तुत करते थे।

आरम्भ में हुज़ूर (सल्ल०) की नुबूवत और सन्देश को क़ौम के सरदारों ने इतना अधिक महत्व नहीं दिया था। (तबरी भाग ३, पृ० ११८०, उमवी ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक बिन मरवान को उर्वा बिन ज़ुबैर का पत्र) लेकिन उन्होंने समस्या के महत्व का अनुमान

लगाया तो उनकी आंखें खुल गयीं। वे आपस में बढ़ती हुई इस इन्सानी जमाअत की प्रतिरक्षा पर मश्विरा करने लगे। अन्ततः क़ुरैशी सरदारों को अबू तालिब ने सन्तुष्ट करके वापस कर दिया। लेकिन हुज़ूर (सल्ल०) ने अपना सन्देश बराबर जारी रखा।

अतएव पहले से अधिक व्यक्ति हुज़ूर (सल्ल०) का आह्वान स्वीकार करने लगे। इससे क़ुरैश और भड़क उठे। उनके धैर्य का पैमाना लबालब भर गया। एक और शिष्ट मण्डल अबू तालिब के पास गया और उन्होंने धमकी दी कि अगर मुहम्मद (सल्ल०) उस काम से न रुके तो उनके विरुद्ध, शक्ति परीक्षण होने लगेगा और अगर अबू तालिब ने प्रतिरक्षा की, तो उस समय तक लड़ाई जारी रहेगी, जब तक कि एक-एक फ़रीक़ खत्म न हो जाए।

इससे कोई विशेष परिणाम न निकला। तब उन्होंने एक दूसरा हल लेकर अबू तालिब से भेंट की कि क़ुरैश के उच्च परिवार के एक सच्चरित्र युवक को अबू तालिब बेटे के रूप में लेकर मुहम्मद (सल्ल०) को उनके हवाले कर दें। उनकी मांग को अबू तालिब ने खुले शब्दों में रद्द कर दिया और शिष्ट मण्डल यह कह कर वापस हुआ कि सम्मानपूर्वक अबू तालिब ने कोई मांग स्वीकार नहीं की है।

इसके साथ ही हुज़ूर (सल्ल०) और उनके साथियों का खुल कर विरोध शुरू किया।

दमन-चक्र

दमन-चक्र शुरू करते ही क़ुरैश ने निर्णय किया कि हर एक क़बीला और परिवार अपने भीतर मुसलमान होने वाले व्यक्तियों पर अत्याचार करेगा, यहां तक कि वे इस्लाम से फिर जाएं।

अबू जहल शारीरिक कष्ट देने के अतिरिक्त कष्ट पहुंचाने के लिए मनोवैज्ञानिक अस्त्र भी इस्तेमाल किया करता था। कोई सम्मानित तथा श्रेष्ठ व्यक्ति इस्लाम स्वीकार करता तो अबू जहल

उसे विभिन्न तरीक़ों से रुसवा करने का यत्न करता और कहता, 'हम तेरी मूर्खताओं का अन्त करेंगे, तुझे अति अपमानित करेंगे, इस लिए कि तू पुरखों का धर्म छोड़ चुका है, जो तुझसे अधिक सक्षम और समझदार थे। अगर इस्लाम लाने वाला व्यक्ति व्यापारी होता तो अबू जहल यों धमकी देता और कहता, हम भी देखें कि तू यहां किस प्रकार अपना माल बेचता है, तेरी पूरी पूंजी नष्ट करके ही हम चैन लेंगे।

अब अगर इस्लाम स्वीकार करने वाला व्यक्ति दुर्बल और धनहीन होता, तो अबू जहल उसे अति शारीरिक कष्ट पहुंचाता और दूसरों को इसका प्रलोभन भी देता। (इब्ने हिशाम)। इसी कारण शारीरिक कष्ट उन मुसलमानों को दिया गया जो या तो पास थे या इस्लाम लाने के कारण क़बीले से निकाले गये थे।

खब्बाब इब्नुल अरत्त, बिलाल बिन रिबाह, अबू फ़क़ीह यसार, अम्मार बिन यासिर, सुहैब रूमी और दासियों में से न जाने कितने अपने स्वामियों के दमन-चक्र का शिकार हुए। इन अत्याचारों की कथा का अध्ययन करते वक़्त मन सिहर उठता है। पर इतने सब अत्याचार सहन करने के बादजूद उनमें से एक का भी क़दम डगमगाया नहीं। उन्हीं में से अधिसंख्य को हज़रत अबूबक्र तथा अन्य धनी मुसलमानों ने ख़रीद कर आज़ाद कर दिया और जो इस प्रकार स्वतन्त्र न किए गए, वह लम्बी मुद्दत तक अत्याचारों का शिकार हुए।

इन निर्धनों की हालत अति दुखद थी। वह अपने स्वामी की मिल्कियत थे। उनसे हर तरह का मामला करने का स्वामियों को हक़ था, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य मुसलमानों की हालत दैत्य नहीं थी, वे भी अत्याचारों से बच न सके। हज़रत उसमान बिन अफ़्फ़ान (रज़ि०) यद्यपि बनू उमैया के मालदार व्यक्ति थे, लेकिन उनके चाचा अम्न बिन अबिल आस उन्हें रस्सी से बांध कर मारते थे।

सईद बिन सैयद बिन अम्र बनू अदी के व्यक्ति थे । हज़रत उमर (रज़ि०) की बहन फ़ातमा उनके निकाह में थीं । इन मियां-बीवी के इस्लाम लाने की वजह से हज़रत उमर तलवार लेकर उन के क़त्ल को तैयार हो गये । जब बहन ने बचाव किया, तो उसे भी घाव लग गये ।

इसी तरह अब्दुल्लाह बिन अस्अद, अबूज़र ग़िफ़ारी और ज़ुबैर बिन अब्बास जैसे प्रतिष्ठित व्यक्ति भी दमन-चक्र के शिकार हुए ।

मुस्लिम व्यापारियों को अबू जहल ने धमकी दे दी थी कि हम तुम से व्यापार नहीं करेंगे । इसके लिए उदाहरण के रूप में हज़रत अबूबक्र (रज़ि०) का मामला ही काफ़ी है । जब अबूबक्र (रज़ि०) इस्लाम लाए, तो उनके पास चालीस हज़ार दिरहम थे, लेकिन तेरह वर्ष बाद अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) हुज़ूर (सल्ल०) के साथ मदीना जाने के लिए निकले तो उनके पास सिर्फ़ पांच सौ दिरहम रह गये थे । (इब्ने साद, भाग ३, पृ० १२२)

इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने इस्लाम के लिए बड़ी आर्थिक सेवाएं की हैं । अत्याचारों का शिकार कितने ही दासों को उन्होंने ख़रीद कर आज़ाद किया । इन दासों के स्वामी मुंह मांगी क़ीमत वसूल करते थे ।

बहरहाल अगर उनका व्यापार बिल्कुल समाप्त न हो गया होता तो उनकी पूंजी में इतना बड़ा अन्तर नज़र नहीं आ सकता ।

अपने क़बीले के शरण में जीवन बिताने वाले व्यक्ति पर अत्याचार करने की ज़िम्मेदारी अबू जहल ने स्वयं ले ली थी । प्यारे नबी (सल्ल०) भी उसी के शिकार थे । यद्यपि बनू हाशिम और बनू अब्द मुनाफ़ कमज़ोर हो गये थे, लेकिन इस सीमा तक नहीं कि अपने एक व्यक्ति पर कोई दूसरा क़बीला ज़ुल्म करे और वह ख़ामोश रहें, इसलिए प्यारे नबी (सल्ल०) पर अत्याचार करने से लोग डरते थे । उनको डर यह था कि कहीं बनू हाशिम एक साथ उन पर धावा न बोल दें ।

जब अबू तालिब को यह सूचना मिली कि मुसलमानों पर सामूहिक रूप से अत्याचार करने की योजना बन चुकी है, तो उन्होंने इस समस्या पर मश्विरा करने के लिए बनू हाशिम को तलब किया और उनके सामने हुज़ूर (सल्ल०) की सुरक्षा का महत्त्व स्पष्ट किया और इस समस्या पर अबू लहब के अतिरिक्त पूरे बनू हाशिम सहमत थे।

अबू लहब बिन अब्दुल मुत्तलिब का मूल नाम अब्दुल उज़्ज़ा था। उज़्ज़ा नामी मूर्ति से संबंध जोड़ने के कारण उसे यह नाम मिला था। यह हुज़ूर (सल्ल०) का चचा और अबू तालिब का सगा भाई था। क़बीलागत जीवन की रीतियों के अनुसार उसकी ज़िम्मेदारी थी कि बनू हाशिम के साथ मिलकर मुहम्मद (सल्ल०) की सुरक्षा करता। लेकिन उसने अबू सुफ़ियान की बहन हर्ब बिन उमैया की बेटी उम्मे जमीला (हम्मालतुल हतब) से निकाह किया और पत्नी का पूरा परिवार हुज़ूर (सल्ल०) के विरोध पर उतारू था और इस विषय में अबू लहब ने ससुराली रिश्तेदारों का साथ दिया।

एक और घटना भी बयान की जाती है। जब सईद बिन आस बिन उमैया की मौत का समय निकट आया तो अबू लहब ने उसका पूछना किया। उसने देखा कि सईद की आंखों से निरन्तर अश्रुधारा बह रही है। अबू लहब ने आश्चर्य से प्रश्न किया, क्या मौत के डर से रो रहे हो ? सईद ने उत्तर दिया, नहीं! मैं इस विचार से रो रहा हूं कि मेरे बाद उज़्ज़ा (एक मूर्ति) की पूजा कौन करेगा ? यह सुन कर अबू लहब ने कहा, आपकी ज़िंदगी में लोग उज़्ज़ा की पूजा करते थे, पर आपके भय से ऐसा नहीं था, लोग अपनी इच्छा से करते थे। इसलिए आपकी मृत्यु के बाद जिनको पूजना होगा, वे तो पूजेंगे ही।

यह सुन कर सईद बहुत खुश हुआ, कहने लगा कि यह देख कर प्रसन्नता हुई कि मेरे बाद मेरा उत्तराधिकारी मौजूद है, अतएव अब मुझे अपने मरने का बिल्कुल दुख नहीं। अबू लहब ने अपना

वायदा निभाया, आजीवन उज़्ज़ा की पूजा करता रहा।

(किताबुल अस्नाम, अबू मुंज़िर हिशाम-अलक़लबी)

उस ज़माने में अबू जहल ने खुल कर हुज़ूर (सल्ल०) को गालियां देने तथा आपका मज़ाक़ उड़ाने की मुहिम शुरू की, बल्कि कुछ शारीरिक कष्ट भी पहुंचाए। हुज़ूर (सल्ल०) ने न उसका उत्तर दिया और न कोई कार्रवाई की, बल्कि पूरे धैर्य के साथ अपने मिशन में लगे रहे, पर यह घटना सुनकर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि०) ग़ुस्से में भरे हुए काबे के पास आए जहां अबू जहल तथा अन्य क़ुरैशी सरदार बैठे हुए थे। जाते ही हज़रत हमज़ा ने अपनी धनुष अबू जहल के सर पर रसीद की और घायल किया और कहा, 'क्या तू मुहम्मद को गाली देगा ? तो यह देख, मैं भी मुहम्मद का दीन स्वीकार करता हूं, साहस हो तो उठ कर आओ। अबू जहल के परिवार बनू मख़्ज़ूम के कुछ व्यक्ति हज़रत हमज़ा का मुक़ाबला करना चाहते थे, पर स्वयं अबू जहल ने बीच-बचाव करके मामला समाप्त किया। मामले को बढ़ाने से होने वाली हानियों का चतुर अबू जहल को अनुमान था।

हज़रत हमज़ा के इस्लाम स्वीकार कर लेने के बाद क़ुरैश के सरदारों ने इस समस्या को महत्व देकर इस पर फिर से विचार करना आरम्भ किया। किसी समझौते पर तैयार होने के उद्देश्य से उन्होंने हुज़ूर (सल्ल०) से मुलाक़ात का निर्णय किया। उत्बा बिन रबीआ बिन अब्ने शम्स ने हुज़ूर (सल्ल०) से इस प्रकार अर्ज़ किया, मेरे भतीजे ! तू ने क़ौम की एकता को समाप्त कर दिया। उनके विश्वासों तथा आस्थाओं को ग़लत बताया, उनके उपास्यों की निंदा की। मैं तेरे सामने कुछ बातें रखता हूं, इसमें से जो भी चाहो तुम स्वीकार कर सकते हो। तू अगर मालदार बनना चाहता है तो हम तुझे इतना धन देंगे कि तू हममें से सबसे बड़ा दौलतमन्द बन जाएगा। अगर तू पद चाहता है, तो तुझे क़ौम का सरदार मान लेंगे, तेरे हुक्म के ख़िलाफ़ एक पत्ता भी न हिलेगा। अगर तू हमारा

बादशाह बनना चाहता है, तो हम इसके लिए भी तैयार हैं। अगर तुझे कोई शैतानी असर हुआ है, तो हम उसका भी इलाज कर देंगे, इस संबंध में तमाम खर्चे हम स्वयं सहन करेंगे।

जब उत्बा बात खत्म कर चुका, तो हुज़ूर(सल्ल०)ने फ़रमाया, आपको जो कहना था, वह कह चुके, क्या अब मेरी बात सुन सकते हैं ?'

उत्बा ने कहा, 'ज़रूर।'

हुज़ूर (सल्ल०) ने सूरः हा-मीम का आरम्भ से पाठ किया और जब तिलावत के सज्दे का मौक़ा आया तो हुज़ूर (सल्ल०) ने सज्दा किया और फ़रमाया, अबुल वलीद ! ध्यान से सुन लिया ? यह है मेरा उत्तर।

उत्बा लज्जित होकर सर झुकाए चल दिया। मित्रों के पास पहुंच लर यूं बोला, मित्रो ! मैंने आज कुछ चमत्कारपूर्ण वाणी सुनी है, न वह जादू है और न कविता। अगर मेरी बात मानो, तो उसे उसके हाल पर छोड़ दो।

सबने एक स्वर में कहा, खुदा की क़सम ! मुहम्मद ने तुम पर अपना जादू चला दिया।

उत्बा ने कहा, मुझे जो कुछ कहना था, मैं कह चुका, अब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने।

इसके बाद क़ुरैश ने एक बड़ी सभा में हुज़ूर (सल्ल०) को निमंत्रित किया। उपरोक्त बातें आपके सामने रख दीं। उसके उत्तर में आपने फ़रमाया, 'मैं किसी प्रकार का पद नहीं चाहता, मैं खुशखबरी देने वाला और डराने वाला बना कर भेजा गया हूं। मेरी मानोगे तो यहां भी और परलोक में भी सफ़ल रहोगे। न मानोगे तो अल्लाह हमारे-तुम्हारे बीच फ़ैसला करने वाला है।

इसके बाद हुज़ूर (सल्ल०) से लोग अनेकों प्रकार के प्रश्न करने लगे। लोग पूछ रहे थे—

'अपने पालनहार से कहिए कि मक्का में एक नहर जारी कर दे।'

आस-पास की घाटियों को बदल कर उसे एक समतल मैदान बना दे।'

'हमारे मृत पुरखों को जीवित करने की अपने ईश्वर से दुआ करें।'

जब कोई बात न बनी, तो क़ुरैश के एक व्यक्ति ने कहा, हमने अपनी ज़िम्मेदारी पूरी कर ली। अब हम तुझे छोड़ने वाले नहीं हैं। या तो हम तुझे समाप्त करेंगे या तू हमें समाप्त करेगा। दोनों में से एक बात न होने तक हम शांत न बैठेंगे।

इसके बाद क़ुरैश हुज़ूर (सल्ल०) को भी कठोर यातनाएं देने लगे। एक बार उन्होंने काबे के पासहुज़ूर (सल्ल०) को पकड़ा और आपकी गरदन मुबारक में तहमद बांध कर आपको खींचने लगे। अगर हज़रत अबूबक्र मौक़े पर न पहुंचते तो ज़ालिम आपको ज़िन्दा न छोड़ते।

इसी तरह क़ुरैश ने एक मौक़े पर हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ को मारा-पीटा और आपकी दाढ़ी के बाल नोच डाले।

इसके बाद हुज़ूर (सल्ल०) जहां भी निकलते लोग आपको कष्ट पहुंचाते और गाली देते, रसूल (सल्ल०) के मार्ग में कांटे डालते, रसूल (सल्ल०) के घर के सामने गन्दगी के ढेर डाल देते।

तात्पर्य यह कि मुसलमानों का मक्के में रहना बिल्कुल असम्भव हो गया। शत्रुओं के अत्याचारों से वह कहीं भी बचे हुए न थे। जब भी मुसलमान आकर हुज़ूर (सल्ल०) से शिकायत करते तो आप धैर्य धारण करने की शिक्षा देते।

लेकिन यह स्थिति अधिक दिनों तक सहन नहीं की जा सकती थी। अन्ततः हुज़ूर (सल्ल०) ने मुसलमानों को हब्शा की तरफ़ हिजरत करने की अनुमति दे दी। इस हिजरत के कई कारण बताये जाते हैं। बहरहाल मूल कारण क़ुरैश के अत्यधिक अत्याचार ही थे,

लेकिन एक आश्चर्यजनक बात यह भी है कि वे निर्धनों तथा निर्बल मुसलमान हिजरत नहीं करते हैं, जिन्हें स्वयं उनके क़बीले वालों ने शरण देने से इंकार कर दिया था। फिर जाने वाले कौन थे? विभिन्न परिवारों के सक्षम तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति। उनके अधिसंख्य के बारे में इतिहास से कोई अनुमान नहीं हो पाता, जिससे यह जाना जा सके कि वे अत्याचारों से पीड़ित थे। किसी अन्य कारण से गये हों इसका भी पता न चल पाता।[1]

---

१. यद्यपि वे सब स-क्षम तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, लेकिन उन पर होने वाले अत्याचारों से इन्कार ठीक नहीं जान पड़ता, उनके क़बीले वाले ही उन पर अत्याचार करते थे और पीड़ा पहुंचाते थे। इसी कारण हुज़ूर (सल्ल०) की अनुमति से लोग हब्शा हिजरत कर गये।

हज़रत उस्मान उस वक़्त के मुसलमानों में सर्वाधिक धनी थे, लेकिन इसके बावजूद उनके चचा हब्श बिन अबिल आस ने उन्हें रस्सी से बांध कर मारा-पीटा। (लेखक ने स्वयं इसका उल्लेख किया है) परिवार का कोई व्यक्ति, उनकी सहायता के लिए आगे न आया।

दूसरे एक प्रमुख व्यक्ति ज़ुबैर बिन अब्बास (रज़ि०) थे, जिन्हें उनके चचा नौफ़ुल बिन ख़ुवैलद ने मारा-पीटा। उस दुष्ट ने उन्हें चटाई में लपेट कर बांध दिया और उनकी नाक में धुवां कर दिया, जिससे उनकी सांस घुटने लगी।

मुसअब बिन उमैर को बाप ने ज़ंजीर से बांध दिया था। काफ़ी समय तक वे इसके कष्ट को भोगते रहे। ख़ालिद बिन सईद को उनके घर वालों ने घर में बन्द करके खाना-पीना देने से रोक दिया था, पड़ोस के लोगों से कहा गया, न तो उनकी सहायता की जाए, न बात की जाए। आख़िर एक दिन मौक़ा पाकर वहां से भाग गए। कुछ दिन मक्का के पास-पड़ोस ही में छिपे रहे और हिजरत करने वाले दूसरे ग्रुप के साथ वह भी हब्शा रवाना हो गए। सलमा बिन हिशाम को उसके भाई अबू जहल ने कष्ट पहुंचाया और अपमानित किया।

पश्चिमी लेखकों ने बहुत से कारण बताए हैं, जो दूर की कौड़ी ही जान पड़ती हैं, उनमें से केवल एक कारण ही ऐसा है जिनका परिस्थितियां साथ दे पाती हैं।

इस्लाम से विमुख करके पुरखों के धर्म की ओर लाने के लिए क़ुरैश बराबर कोशिश करते रहते थे। अबू तालिब और हुज़ूर (सल्ल०) से कोई समझौता न होने के कारण क़ुरैश के हर परिवार ने अपने यहां मुस्लिम व्यक्तियों को दमन-नीति अपना कर, इस्लाम से वापस लाने की कोशिश शुरू की। (तब्री, भाग ३, पृ० ११८०-८१) उर्वः बिन जुबैर ने खलीफ़ा अब्दुल मलिक बिन मरवान के नाम अपने एक पत्र से भी इसी का उल्लेख किया है। (बुख़ारी, किताबुल ईमान) उन्होंने लिखा है कि—

'क़ुरैश के सरदारों ने इस समस्या पर विचार किया कि अपने परिवार के व्यक्तियों को इस्लाम स्वीकार करने तथा हुज़ूर के आज्ञापालन से किस प्रकार रोका जाए। अबू जहल के उपहास करने का भी उद्देश्य यही था। अबू जहल ने मुसलमानों को लज्जित करने के लिए मुसलमानों से बराबर यही कहना शुरू कर दिया था कि तुम्हारे पुरखे तुम से बेहतर थे तथा बुद्धिमान थे, इसके बावजूद तुमने उनकी राह छोड़ कर नयी राह बनायी। निरन्तर गिरने वाले पानी की बूंद पत्थर पर भी अपना चिह्न अंकित करती है। मनोवैज्ञानिक ढंग से इस उपहास का उद्देश्य यह था कि कम से कम कमज़ोर व्यक्ति ही, बराबर किये जा रहे इस उपहास का प्रभाव ग्रहण करेंगे। इस्लाम उनके लिए एक नयी बात थी, उसके प्रभाव अब भी सुदृढ़ न हो पाये थे, उनका वातावरण उनके विश्वासों तथा विचारों से बिल्कुल भिन्न तथा प्रतिकूल था। राष्ट्रीय क़िस्सों तथा कहानियों का प्रभाव हर दिन उनके अनुभव में आ रहा था। अतएव

अत्याचारों की इसी श्रृंखला ने इन लोगों को हब्शा की तरफ़ हिजरत कर जाने पर बाध्य किया। —अनुवादक

लोग कड़ी परीक्षाओं में फंसे हुए थे। अतएव हुज़ूर (सल्ल०) ने महसूस किया कि इस विषैले वातावरण से उनका दूर चला जाना ही उनके हित में होगा और इस प्रकार आपने उनको हब्शा की ओर हिजरत करने की अनुमति दे दी।

लेकिन मुसलमानों को जो शरण मिली, वह क़ुरैश को कदापि पसन्द न आयी। उन्होंने हब्शा में भी मुसलमानों को नहीं छोड़ा। इसका कारण भी स्पष्ट नहीं हो पा रहा है। मक्का के उस समय के क़ानूनों के अनुसार ये शरणार्थी किसी प्रकार अपराधी समझे जाने के अधिकारी न थे। कोई दंडनीय अपराध उन्होंने किया था नहीं, अतएव वे किसी प्रकार भी छिप कर भागने वाले अपराधी न थे। इसके बावजूद क़ुरैश उनका पीछा नहीं छोड़ते।

क़ुरैश ने दो व्यक्तियों को चुन कर हब्शा के बादशाह (नजाशी) के पास रवाना किया। ये दोनों व्यक्ति बहुत सा माल तथा उपहार ले गये। हब्शा का शाही परिवार तथा जनता ईसाई थी। क़ुरैशी शिष्ट मंडल ने महल में हाज़िरी से पहले ही ईसाई पादरियों से सांठ-गांठ की कोशिश की। हर एक पादरी के सामने उपहार प्रस्तुत करते हुए यूं बोले, 'जब हम बादशाह सलामत से मुसलमानों के संबंध में बात करेंगे, तो आप बादशाह को सुझाव दें कि वह मुसलमानों को लौटा दें।' पादरियों ने हामी भर ली।

फिर वह शाही महल में उपहार लेकर पहुंचे, मुसलमानों को वापस करने की बात कही, लेकिन उनकी चाल चल न सकी। पीड़ितों को वापस करने के लिए नजाशी तैयार न हुआ, बल्कि उस ने उपहार भी वापस कर दिए। इस प्रकार क़ुरैशी शिष्ट मंडल की विफलता से घबराए हुए क़ुरैश को इसी बीच हज़रत उमर के इस्लाम स्वीकारने से बड़ी घबराहट हुई, परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने अत्याचारों की गति और तेज़ कर दी।

इस तरह निरन्तर विफलताएं क़ुरैश की आंखें खोल देने के लिए काफ़ी थीं। यदि उनके पास कुछ भी सूझ-बूझ होती, तो वे समझ

सकते कि थे इससे भी बड़ी कोई शक्तिशाली अनदेखी शक्ति कार्य कर रही है, लेकिन आंखें बन्द कर रखीं, बल्कि निरंतर विफलताओं ने जलते में तेल का काम किया। उनकी दुश्मनी की आग भड़क उठी। इस 'उपद्रव' की जड़ के अन्त का उन्होंने निर्णय किया।

किसी प्रकार हुज़ूर (सल्ल०) की हत्या करने की क़ुरैश में प्रबल इच्छा पैदा हुई, लेकिन इस राह की सबसे बड़ी बाधा हुज़ूर (सल्ल०) का परिवार था। हर विरोध के समय उनकी रुकावट सामने आती थी। अन्ततः उन्होंने निर्णय किया कि बनू हाशिम और बनू मुत्तलिब से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया जाए, पर वे विफल हुए, इसलिए उन्हें आशा थी कि बनू हाशिम हुज़ूर (सल्ल०) को अपने से अलग कर देंगे या कहीं दूर रवाना कर देंगे। तमाम क़ुरैश सरदारों ने मिल कर एक हलफ़नामा लिखा, जिसकी शर्तें निम्न थीं—

१. बनू हाशिम और बनू मुत्तलिब से निकाह का ताल्लुक़ न जोड़ा जाए, न उनसे लड़कियां ली जायें और न उन्हें लड़कियां दी जायें।

२. उनसे लेन-देन की अनुमति नहीं है, न उनको कोई चीज़ बेची जाए और न उनसे स्वीकार की जाए।[1]

इस दस्तावेज़ पर सबने हस्ताक्षर किये और मुहर लगायीं। घोषणा के लिए उसे काबे पर लटका दिया गया। उद्देश्य यह था कि तमाम लोग जान जाएं कि हुज़ूर (सल्ल०) के परिवार से न लेन-देन किया जाए और न ही शादी-ब्याह किया जाए।

बनू हाशिम ने आपस में मश्विरा किया कि अपने परिवार की घाटी (शाबे अबी तालिब) में जमा हो जाएंगे। ऐसा इसलिए किया कि एक साथ रहने से आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे के काम आ

१. धार्मिक सहिष्णुता न होने के कारण मक्का के धर्म-नेता ऐसा करने पर बाध्य हुए हैं।

सकेंगे और बिखरे हुए होने पर क़ुरैश के दमन-चक्र से बचना सम्भव न हो सकेगा। अबू लहब को छोड़ कर पूरा परिवार वहां इकट्ठा हो गया। दो तीन वर्ष उन्होंने अवर्णनीय परेशानियों और कठिनाइयों को झेला। कई बार पेड़ों के पत्ते और छालें खा-खा कर पेट की आग बुझाई। अन्ततः अल्लाह ने विरोधी गिरोह में से ही, सहानुभूति रखने वाले व्यक्ति पैदा किए। उन्होंने इन अत्याचार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी। अबू जहल के विरोध के बावजूद इस दस्तावेज को टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया और बनू हाशिम को अपनी शरण में शाबे अबी तालिब से बाहर लाए।

कुछ दिनों के बाद अबू तालिब और उम्मुल मोमिनीन हज़रत ख़दीजा इस दुनिया से सिधार गयीं। वे दोनों कठिनाइयों के समय हुज़ूर (सल्ल०) का साथ दिया करते थे। अबू तालिब के बाद इस परिवार की सरदारी उनके छोटे भाई अबू लहब के हिस्से में आयी। अबू लहब की दुश्मनी खुली हुई थी और इसी प्रकार क़ुरैश के अत्याचार भी पहले के मुक़ाबले में काफ़ी बढ़ गये। हुज़ूर (सल्ल०) जब भी बाहर निकलते, लोग उनकी खिल्ली उड़ाते और जुम्ले कसते।

एक बार एक गुंडे ने हुज़ूर (सल्ल०) के सर में मिट्टी तक डाली।

जब हुज़ूर (सल्ल०) ने महसूस किया कि मक्का के क़ुरैश अपने द्वेष तथा शत्रुता का प्रदर्शन करने में कमी नहीं करेंगे, तो इस आशा पर कि शायद ताइफ़ का कोई व्यक्ति आपकी बात स्वीकार कर ले, आप ताइफ़ रवाना हुए।

ताइफ़ बनू सक़ीफ़ की मिल्कियत में था। इधर के लोग धनीमानी व्यक्ति थे, मुख्य रूप से अम्र बिन उमैर के तीन लड़के (अब्द, मसूद, हबीब) बहुत ही ज़्यादा प्रभाव वाले थे। हुज़ूर (सल्ल०) ने उनके पास जाकर इस्लाम का सन्देश प्रस्तुत किया, लेकिन उन्होंने भी हुज़ूर (सल्ल०) के आह्वान को रद्द कर दिया। जब हुज़ूर

(सल्ल०) निराश होकर वहां से लौटे, तो उन्होंनें गुंडों और दासों को हुज़ूर (सल्ल०) के विरुद्ध भड़का कर रवाना किया। पहले उन्होंने ताली बजा कर उपहास करके, गाली देकर हुज़ूर (सल्ल०) का अपमान किया और बाद में पत्थर बरसाए, जिस से आपके क़दमे मुबारक में चोट आयी, खून बहने लगा। हुज़ूर (सल्ल०) ने बड़ी कठिनाई से इन लोगों से निजात हासिल की और एक मक्की व्यक्ति के बाग़ में शरण ली।

मक्का और ताइफ़ अपेक्षतः बड़े नगर थे। पूरे देश का व्यापार इन दो नगरों के व्यक्तियों के हाथ में था। वलीद बिन मुग़ीरा का एक कथन क़ुरआन ने इस प्रकार नक़ल किया है—

'यह क़ुरआन दो शहरों के किसी बड़े आदमी पर क्यों न उतरा?'

इस आयत के शब्द 'दो शहर' से तात्पर्य मक्का और ताइफ़ है। इन दो शहरों के लोग किसी तरह इस्लाम स्वीकार कर लोक-परलोक का कल्याण प्राप्त करने की कामना पर हुज़ूर (सल्ल०) ने दस-ग्यारह वर्ष तक निरन्तर यत्न किया, लेकिन उनमें से थोड़ी-सी संख्या के अतिरिक्त तमाम लोगों ने पारिवारिक पक्षपात, शक्ति मान-सम्मान पर गर्व करने के कारण हुज़ूर (सल्ल०) के आह्वान को रद्द कर दिया। हुज़ूर (सल्ल०) और आपके साथियों को हर प्रकार के अत्याचार का निशाना बनाया और हुज़ूर (सल्ल०) का आह्वान स्वीकार करने वाले स्वदेश छोड़ कर जाने पर विवश हुए।

इसके बाद हुज़ूर (सल्ल०) ने अपने आह्वान के लिए दूसरे क़बीलों ये भेंट की। वर्ष के विभिन्न भागों में हज तथा अन्य कार्य-क्रमों के लिए मक्का आने वाले क़बीलों के कैम्प में जाकर इस्लाम का सन्देश पहुंचाना हुज़ूर (सल्ल०) की आदत सी बन गयी लेकिन हुज़ूर (सल्ल०) जहां से भी गुज़रते चचा अबू लहब उनका पीछा करता था। जब हुज़ूर (सल्ल०) अपना सन्देश दे चुके होते, तो बोलता, यह लात और उज़्ज़ा की इबादत से तुम्हें अलग करना चाहता है, यह एक नये धर्म के साथ आया है, तुम्हें ग़लत रास्ते की

ओर बुलाता है, इस लिए इसकी बातों में न आना, याद रखना ।'

(इब्ने हिशाम, भाग ५, पृ० ६५)

पूरे वर्ष हुज़ूर (सल्ल०) ने विभिन्न क़बीलों को इस्लाम स्वीकार करने पर तैयार करने की भरकस जद्दोजेहद जारी रखी और इस में कुछ प्रगति भी हुई, लेकिन इस विषय में बहुत कम लोगों ने अपनी रुचि दिखायी ।

कारण स्पष्ट था । मक्का अरब की रीढ़ की हैसियत रखता है । धन तथा सामूहिक शक्ति में मक्का वाले समूचे अरब में अग्रणी थे । दूसरे क्षेत्रों के लोग उन पर, अपनी अजीविका का किसी हद तक आश्रय रखते थे, इस के अतिरिक्त काबा भी मक्का में स्थित है, जहां हर क़बीला हज के लिए हाज़िर होता था । हज के साथ व्यापार के अवसर भी प्राप्त होते थे । उनका जीवन बड़ी हद तक इसी पर आश्रित था । ऐसी स्थिति में मक्का के रहने वाले सरदार जब हुज़ूर (सल्ल०) के आह्वान को ठुकरा चुके थे, तो दूसरे उसे कैसे स्वीकारते ।

जब मक्के के 'बड़े' लोगों ने हर प्रकार से यह सिद्ध कर दिया कि वे किसी प्रकार यह सन्मार्ग स्वीकार करने पर तैयार नहीं हैं, तो हुज़ूर (सल्ल०) को ईश्वरीय आदेश मिला कि जो इसे स्वीकारने पर तैयार हैं, आप उन्हें ही अपना सन्देश पहुंचायें ।

दसवें वर्ष के हज के अवसर पर हुज़ूर (सल्ल०)अपनी आदत के अनुसार विभिन्न क़बीलों के कैम्प में जाकर अपना सन्देश प्रस्तुत कर रहे थे कि मदीना के क़बीले ख़ज़रज के कुछ व्यक्तियों से आपकी भेंट हुई । हुज़ूर (सल्ल०)ने उन्हें इस्लाम का सन्देश पहुंचाया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया । दूसरे वर्ष और १२ व्यक्तियों ने आकर इस्लाम स्वीकार कर लिया । तीसरे वर्ष ७३ व्यक्तियों ने इस्लाम स्वीकार किया । इस प्रकार क्रमांगत मदीना में मुसलमानों की संख्या अच्छी भली हो गयी । फिर हुज़ूर (सल्ल०) ने मक्का के मुसलमानों को मदीना हिजरत करने की अनुमति दे दी । इस प्रकार वे एक-एक

दो-दो करके मदीना पहुंच गए। बहुत ही कमज़ोर और दूसरों के पराधीन व्यक्ति ही मक्का में रह गए। इस के अतिरिक्त हुज़ूर (सल्ल०) के साथ अबूबक्र सिद्दीक़ और हज़रत अली ही रह गए थे।

शत्रुओं की आंख खुल गयी। मुसलमान इस तरह सब के सब मदीना पहुंच गए, तो हुज़ूर (सल्ल०) भी एक दिन वहां के लिए चल पड़ेंगे, इस का इन्हें अनुमान था। इस घटना से आने वाली परिस्थियों का अनुमान लगाने में उन्हें देर नहीं लगी। वे समझ गये कि हुज़ूर (सल्ल०) के मदीना पहुंचने का अर्थ यह है कि मक्का और मदीना में लड़ाई का सिलसिला शुरू होगा।

इस समस्या के हल की खोज निकालने के लिए वे 'दारुन्नदवः' में एकत्र हुए। एक व्यक्ति ने मश्विरा दिया कि हुज़ूर (सल्ल०) के हाथ पैर बांध कर उन्हें एक कोठरी में बन्द कर दिया जाए और खाने-पीने की चीज़ें न दी जाएं।

इस विचार के खंडन में और लोग यूं कह उठे—

'मुहम्मद जब तक जीवित रहेगा, हमें शान्ति न मिलेगी। उसे प्राप्त करने के लिए उसके मानने वाले हमसे युद्ध करेंगे, उसे स्वतंत्र किये बिना वह चैन से नहीं रहेंगे।

दूसरे व्यक्ति ने विचार रखे, कि इसे देश से बाहर निकाल दो। वह जहां चाहे, चला जाए, उस से हमें क्या लेना-देना? हमें मुक्ति तो मिलेगी। इस विचारा का दूसरे ने इस प्रकार खंडन किया, 'यह बहुत बड़ी मूर्खता होगी। मुहम्मद की वाणी का जादू आप सभी जानते हैं, जिस तक भी यह पहुंचेगा, वही इसमें आकर्षण का अनुभव करेगा। ख़ुदा की क़सम! अगर हम इसे वतन से बाहर निकालेंगे तो वह हमारे विरुद्ध पूरे देश में नया वातावरण पैदा कर देगा। अपनी जादू भरी वाणी से सब को फंसा कर हम पर आक्रमण करेगा और उस की दासता स्वीकार करने पर हम विवश होंगे। फिर वह हमसे जिस प्रकार का चाहेगा, व्यवहार करेगा।'

अबू जलह ने कहा कि मेरे विचार से एक और तरीक़ा अपनाया जा सकता है। जब सबने उसका विचार सुनने की उत्सुकता दिखायी तो उस ने यों कहा, 'हम हर क़बीले में से एक साहसी युवक लें और उसके हाथ में तलवार थमा दें और ये सब मिलकर मुहम्मद (सल्ल०) का क़िस्सा तमाम करें। इस तरह हमें मुहम्मद से मुक्ति मिल जाएगी और उसे क़त्ल करने की ज़िम्मेदारी हर एक क़बीले पर होगी और हर क़बीले से लड़ने का साहस बनू अब्द मुनाफ़ में नहीं है। फिर अगर वे किसी मुआवज़ा के लिए तैयार होते हैं, तो हम इससे बात करेंगे।'

यह निर्णय सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया और सब वापस हुए। (इब्ने हिशाम, भाग २, पृ० १२५-१२६)

दूसरी ओर दयामूर्ति की हिजरत की तैयारी पूरी हो चुकी थी, नबी (सल्ल०) दुश्मन की आंखों में धूल झोंक कर उसी रात अबू-बक्र (रज़ि०) के साथ शहर से रवाना हुए। जब उन्हें दूसरी सुबह एहसास हुआ कि अभिप्रेत व्यक्ति बच कर निकल गया है, तो उन्होंने चारों ओर तलाशी ली, लेकिन जाको राखे साइयां, मारि सके न कोय' उनकी आंखों पर परदा पड़ गया, सही रास्ते से जाकर भी वे प्यारे नबी (सल्ल०) को गिरफ़्तार न कर सके। आख़िर उन्होंने रसूल (सल्ल०) को पकड़ने वाले के लिए सौ ऊंटों का पुरस्कार निश्चित किया, पर वह भी बेकार ही रहा। ख़ुदा ने रसूल (सल्ल०) की सुरक्षा की। आप दुश्मन से बच कर, आप के लिए मौत तक गवारा कर लेने वाले अपने साथियों तक जा पहुंचे।

यह समझा जा सकता था कि अब मुश्रिक ख़ामोश हो जाएंगे, इस लिए कि अधिकांश मुसलमानों को वह देश-निकाला दे चुके थे और जो बचे थे, वे कमज़ोर थे, लेकिन क़ुरैश शांत न रह सके। मदीना में मुसलमानों को कष्ट पहुंचाने की उन्होंने भरपूर कोशिशें कीं। पहले उन्होंने ख़ज़रज क़बीले के सरदार अब्दुल्लाह बिन उबई को पत्र लिखा, जिस में लगभग यह बात अंकित थी—

'हमारे देश से भाग कर जाने वालों को तुमने शरण दी है, या तो उन्हें सब के सब को क़त्ल कर दो या उन्हें मदीने से बाहर कर दिया जाए, वरना खुदा की क़सम ! हम मदीने पर हमला करके उसे तबाह कर देंगे मर्दों को क़त्ल और औरतों को सेविका बनाएंगे।

(अबूदाऊद)

इस के बाद उन्होंने मुसलमानों को एक वक़्त में हलाक करने के लिए निरन्तर तीन युद्ध किये। पहला युद्ध बद्र में हुआ। यह स्थान मक्का से दो सौ से अधिक और मदीने से साठ मील की दूरी पर स्थित है। बद्र के दो वर्ष बाद उहद में युद्ध हुआ। यह स्थान मदीना के दक्षिण में दो ढाई कोस दूर था। तीसरा युद्ध मदीना की दीवारों से लग कर किया गया। मुसलमान शहर में घेर लिए गए। उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए शहर के दक्षिणी भाग में गढ़ा खोदा।

हर युद्ध में मुशिरक क़ौम पहले से अधिक बढ़ती रही।

यहां युद्ध स्थलों की दूरी तथा भौगोलिक विवरणों को मुख्य रूप से इसलिए दिया गया है कि पश्चिमी लेखक दावा करते हैं कि इस्लाम तलवार के बल पर फैला। अगर यह सत्य होता तो ये युद्ध मदीना के निकट होने के बजाए मक्का के क़रीब होते। इन तीनों युद्धों में मुशिरकों ने आक्रमण किया और मुसलमान अपनी प्रतिरक्षा में युद्ध करते रहे। पर हर बार मक्का वाले असफल लौटे। मुसल-मानों की तायदाद दिन प्रतिदिन बढ़ती रही और मुशिरकों की शक्ति हर दिन कम होती गयी। अन्ततः हिजरत के आठ वर्ष बाद नबी करीम (सल्ल०) ने दस हज़ार साथियों के साथ मक्का जीत लिया।[1]

---

१. मक्का जीतने के निम्न कारण थे—

मक्का मुशिरकों और हुज़ूर (सल्ल०) के बीच होने वाले प्रसिद्ध ऐतिहासिक समझौते के कई वायदों को, मक्का वालों ने समय-समय पर भंग किया, और इसके विपरीत मुसलमान किसी प्रकार भी वायदे के खिलाफ़ नहीं

यह मामला बहुत तेज़ी से और बहुत रहस्य के साथ पूरा कर लिया गया। इस्लामी सेना के मक्का के क़रीब पहुंचने तक इस सिलसिले की कोई सूचना मुश्रिकों को न मिल सकी। हुज़ूर (सल्ल०) का मुक़ाबला करने के लिए वे कदापि तैयार न थे। अतएव बे-मुक़ाबला हथियार डाल देने के अतिरिक्त और कोई रास्ता न था।

विजय का दिन गत तमाम मामलों के प्रतिशोध का दिन हो सकता था। मैंने इन घटनाओं को सविस्तार इसलिए बयान किया है कि पाठकों का ज़ेहन इस सत्य की ओर जा सके कि जब शक्ति क़ुरैश के हाथ में थी तो उन्होंने पूरे तौर पर मुसलमानों पर अत्याचार किये, हर प्रकार से उन्हें सताया गया, देश छोड़ कर भागने वालों का पीछा तक किया गया, अपनी तमाम सेनाओं के साथ

कर रहे थे। अन्ततः वे भावनाओं में बह कर सामरिक मर्यादाओं को भी पार कर गये।

घटना यह हुई कि हुदैबिया सन्धि के अनुसार बनू ख़ुज़ाआ नबी (सल्ल०) के और बनू बक्र क़ुरैश के मित्र बन गये। समझौते के अनुसार नबी (सल्ल०) और क़ुरैश इन दोनों में से किसी से युद्ध न कर सकते थे। लेकिन एक अवसर पर किसी झगड़े में बनू बक्र ने बनू ख़ुज़ाआ पर आक्रमण कर दिया। क़ुरैश ने भी अपने मित्र बनू बक्र से मिलकर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के मित्र बनू ख़ुज़ाआ पर आक्रमण कर दिया। ख़ुज़ाआ ने नबी (सल्ल०) से सहायता चाही। समझौते के अनुसार प्यारे नबी (सल्ल०) बनू ख़ुज़ाआ की सहायता के ज़िम्मेदार थे, जिसका अर्थ क़ुरैश से युद्ध था। इस तरह हुज़ूर (सल्ल०) मक्का विजय करने का निश्चय करके चले। इसके बावजूद हुज़ूर (सल्ल०) ने रास्ते में और मक्का के क़रीब ऐसे तरीक़े अपनाये, जिससे ख़ून-ख़राबे की नौबत न आए और इसके नतीजे में रक्तपात के बिना ही मक्का जीत लिया गया।

—अनुवादक

मदीने पर कई आक्रमण किए। मुसलमानों के एक अल्लाह पर ईमान लाने तथा मूर्ति की पूजा छोड़ देने की दुश्मनी में उन्होंने ये सब कारनामे अंजाम दिए। लेकिन रसूल (सल्ल०) बदला लेने के लिए नहीं, बल्कि अल्लाह की रहमत का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए थे। नबी (सल्ल०) जब मक्का में प्रविष्ट हुए तो मक्का वासियों को आपने सूचित किया, कि 'जो बे-मुक़ाबला हथियार रख दें या अबू सुफ़ियान के घर या हरम में पनाह लें या अपने घर के द्वार बन्द करके बैठे रहें तो उनको कोई कष्ट न दी जाएगी।

(इब्ने हिशाम, भाग ४, पृ० ४६)

अन्ततः रसूले करीम (सल्ल०) ने क़ुरैश से पूछा, तुम्हें मालूम है कि मैं तुमसे क्या मामला करूंगा। एक ने उत्तर दिया, 'भलाई का, इसलिए कि तुम भले भाई के भले बेटे हो।'

यह सुन कर हुज़ूर (सल्ल०) ने यह उत्तर दिया—

'आज तुम से कोई बदला नहीं, जाओ, तुम सब आज़ाद हो।

लेकिन हुज़ूर (सल्ल०) ने केवल इस पर बस न किया। मक्का की जीत के साथ ही हुनैन की लड़ाई हुई, जिसमें प्रसिद्ध क़बीला हवाज़िन हार गया। पराजित सेना ने तायफ़ में शरण ली। मुसलमानों ने वहां तक उनका पीछा किया और घेर लिया। सक़ीफ़ क़बीला का केन्द्र तायफ़ था। बारह वर्ष पहले वहां के लोगों ने हुज़ूर (सल्ल०) पर पत्थर बरसा कर आपको लहूलुहान कर दिया था। लड़ाई के लम्बे खींचने का अनुमान कर आपने मुसलमानों को वापस होने का हुक्म दिया और उनके सन्मार्ग के लिए अल्लाह से दुआ की।

इसके बाद लड़ाई से प्राप्त माल हुज़ूर (सल्ल०) ने बांट दिया। कल तक जो क़ुरैश हुज़ूर (सल्ल०) के घोर शत्रु थे, उनको माल का अधिक भाग मिला। एक-एक मालदार को सौ से अधिक ऊंट आपने दिए। अबू सुफ़ियान को सौ ऊंट, उसके बेटे मुआविया को सौ ऊंट, हक्म बिन हिशाम को सौ ऊंट, इसी प्रकार मक्का के बहुत

से व्यक्तियों को सौ-सौ ऊंट दिए। उनसे कम श्रेणी के लोगों को पचास-पचास ऊंट मिले। इससे हुज़ूर (सल्ल०) का उद्देश्य दिल रखना था। उनके इस भ्रम को दूर करना था कि वे एक समय तक मुसलमानों के शत्रु रहे हैं और अन्तिम समय में इस्लाम लाए हैं। अतएव आरम्भ से उस समय तक मुसलमान होने वाले व्यक्तियों से उन्हें कम दर्जा और कम भाग मिलेगा।

क्या उदारता, क्षमा, भाईचारा, सहानुभूति आदि का इतना उच्च उदाहरण मानव इतिहास में किसी नेता ने प्रस्तुत किया है? इस्लाम और मुसलमानों को कष्ट न पहुंचाने वाला एक व्यक्ति भी मक्का में न था। ग़रीब मुसलमानों को मार-मार कर घायल कर दिया। मुस्लिम होने वाले दासों पर किए गए अत्याचारों के विचार से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अत्याचार से परेशान होकर हब्शा गये हुए व्यक्तियों का वहां भी पीछा किया गया, किस प्रकार उन्हें मक्का वापस लाने की कोशिश की गयी। शेष व्यक्ति जब मदीना चले गये तो वहां भी उनसे कई युद्ध किये गये। तमाम लोगों को मुसलमानों के विरुद्ध वरग़ला कर एकत्र किया। अल्लाह ने इस्लाम को सफल बनाया। विरोधियों का यत्न विफल हुआ। अल्लाह ने अपने पैग़म्बर के हाथ में अपने विरोधियों को जान व माल दे दिया तो अल्लाह के रसूल ने न केवल यह कि बदला नहीं लिया, बल्कि उनसे उनके करतूत का उल्लेख तक न किया और उनको सूचित किया कि तुमसे कोई शिकायत नहीं, तुम सब आज़ाद हो।

बल्कि कल तक जो आपके घोरतम शत्रु थे, उनके घरों को युद्ध में मिले माल से मालामाल कर रहे हैं।

यह है दया मूर्ति का रवैया अपने मुश्रिक शत्रुओं के साथ।

यहूदी

मक्का में यहूदी समस्या कदापि नहीं बन सकते थे और न इस का अवसर था, इसलिए कि यहूदी नाममात्र रहते थे। वहां अधिक

संख्या तो अरब के मुश्रिकों की ही थी, अतएव मक्के में केवल उनसे ही मामला रहा, लेकिन मदीने में यहूदी बहुत बड़ी संख्या में रहते थे, इसलिए हुज़ूर (सल्ल०) को मदीना जाते ही यहूदियों से मुक़ाबला करना सहज-स्वाभाविक था। यहूदी क्यों हुज़ूर (सल्ल०) पर ईमान न लाये ? यह प्रथम प्रश्न है, जिस पर हमें विचार करना चाहिए।

क़ुरआन की सूरः हूद में, जहां हूद अलैहिस्सलाम को उनकी क़ौम में भेजे जाने का उल्लेख है, वहां उनका अपनी क़ौम से प्रश्नोत्तर का भी उल्लेख किया किया गया है। उनकी क़ौम जिसी प्रकार अपने पैग़म्बर पर ईमान न ला सकी तो उन्हें हलाक करने का उल्लेख है और बाद में कहा गया है कि—

'यह आद ही थे जिन्होंने अपने पालनहार की आयतों को अस्वीकार कर दिया, उसके रसूलों को ना-फ़रमानी की तथा हर जाबिर सरकश का पालन किया।' (सूरः हूद रुकू : ५)

यह आयत जब भी मेरी नज़र से गुज़री तो मैं ताज्जुब करता था कि आद ने तो एक पैग़म्बर का इंकार किया है, लेकिन उन पर आरोप तमाम पैग़म्बरों के इन्कार का कैसे लगाया गया ? पहले गुज़रे हुए तमाम नबियों पर उनके विरोधियों ने जो अत्याचार किए, उसका रहस्य इसी में निहित है। इस प्रश्न का एक उत्तर मेरे मन में अंकित हो गया है, याद नहीं कि किसी आलिम की पुस्तक में देखा था या स्वतः यह बात समझ में आयी, वह निम्न है—

आपने देखा होगा कि प्रकृति ने विभिन्न वस्तुओं के विभाजन किए हैं। अब तो दैनिक उपयोग के पदार्थ भी इसी ढंग से पैदा किये जाते हैं। हम जो 'ट्रेड मार्क' कहते हैं, वह भी वास्तव में इसी विभाजन का एक प्रदर्शन है। इसका उद्देश्य एक जाति को दूसरी जाति से गुणों की दृष्टि से अलग करना है। रचित जीवों में से हर एक की आदत, गुण जन्म-उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं। किसी एक प्रकार की चीज़ का, गहराई के साथ अध्ययन करने वाले व्यक्ति के लिए,

इस जाति का, दूसरे प्रकारों से अलग करना बहुत आसान होगा।

पर विहंगम दृष्टि रखने वाले व्यक्ति इसके गुणों को न जानने के कारण इसे दूसरे प्रकारों से अलग नहीं करते। लेकिन यदि एक प्रकार की वस्तुओं पर गहरी नज़र रखने वाला व्यक्ति भी यदि उसे दूसरों से अलग न कर सके अर्थात वह उस वस्तु और दूसरे प्रकार की वस्तुओं में अन्तर न कर पा रहा है, तो इसका अर्थ यह है कि वह इस सम्बन्ध में अज्ञानी है और अपने दावे के मुताबिक़ उसने विषय का गहराई तथा गंभीरता में अध्ययन नहीं किया है।

हर काल में नबियों का विरोध करने वाले व्यक्तियों के साथ भी यही मामला पेश आया। किसी भी नबी पर सोच-समझ कर ईमान लाने वाले व्यक्ति अपने पास आने वाले दूसरे नबी का इन्कार न कर सकेंगे। यदि कोई व्यक्ति एक नबी पर ईमान लाकर दूसरे नबी का इन्कार करता है तो इसका अर्थ यह है कि यह व्यक्ति 'किसी विशेष प्रकार पर गहरी नज़र रखने वाले व्यक्ति' जैसा है, जिसे इस विशेष प्रकार की एक वस्तु को पहचान लेना कठिन हो रहा है। अर्थ यह हुआ कि जिस प्रकार यह विशेष प्रकार की वस्तु का अध्ययन करने वाला इस प्रकार के गुणों को नहीं जानता, वैसे ही एक पैग़म्बर पर ईमान लाने वाले व्यक्ति को पैग़म्बरों के गुणों का ज्ञान नहीं है। इसी कारण वह व्यक्ति पैग़म्बर का इंकार करने लगता है, अतएव एक पैग़म्बर के इंकार का अर्थ यह हुआ कि सभी पैग़म्बरों के आने का उसने इंकार किया।

इसी कारण आद क़ौम ने हूद (अलैहिस्सलाम) का इंकार किया, तो उसे क़ुरआन ने तमाम पैग़म्बरों का इंकार बताया, इस लिए कि उनको ज्ञात है कि नुबूवत की वास्तविकता क्या है? नबी की विशेषताएं क्या हैं? सामान्य व्यक्ति से नबी की क्या बात अलग करती है?

देखिए, यहूदियों में कितने-कितने पैग़म्बर आए। क़ुरआन कहता है—

'और एक के बाद एक रसूल आए।'

पर जब उस क़ौम में हज़रत मसीह आए, तो उनका अधिसंख्य उन्हें पहचान न सका। उन पर ईमान लाने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त न हुआ, इसलिए कि हज़रत मूसा और उनके बाद लगातार आने वाले पैग़म्बरों पर ईमान केवल एक आदत की हैसियत रखता है, जो पुरखों के अन्धानुकरण का परिणाम था। इसीलिए कुछ समय बाद आने वाले पैग़म्बर को वे पहचान न सके। इससे मालूम होता है कि वे जिन-जिन पैग़म्बरों पर ईमान रखने का दावा करते हैं, वही पैग़म्बर जब ख़ुद तशरीफ़ लाते, तब भी ये उनको पहचान न सकते थे, बल्कि उनको झुठला देते।

जी हां, जब यहूदियों ने एक पैग़म्बर (ईसा अलै०) का इंकार किया, तो वास्तव में उन्होंने तमाम नबियों को झुठलाया।

मुहम्मद (सल्ल०) को भी यही अनुभव प्राप्त हुआ। यह सच है कि हुज़ूर (सल्ल०) के युग के यहूदी एक पैग़म्बर के आने का बे-सब्री से इन्तज़ार कर रहे थे। उनकी निशानियां भी प्रबल हो गई थीं। यहूदियों के धर्म ग्रन्थों तथा कथनों के बयान से आने वाले पैग़म्बर की इन्तिज़ारी तेज़ी से हो रही थी। लेकिन आने वाला आया और जब उसने अपने पर ईमान लाने की मांग की तो उन्होंने इंकार कर दिया।

हज़रत दाऊद, सुलेमान, इब्राहीम, इस्हाक, याक़ूब, इस्माईल, अल-यसम, ज़करिया और यहया (अलै०) आदि का बार-बार उल्लेख करने से क़ुरआन का उद्देश्य यह है कि जब तुम इन पैग़म्बरों को सच समझते हो, तो उसी कसौटी पर मुहम्मद (सल्ल०) को रख कर परखो, इसलिए कि पिछले नबियों की जो हालत थी, ठीक वही हालत मुहम्मद (सल्ल०) की है।

मक्का के मुश्रिकों की फिर भी विवशता थी कि उनमें नुबूवत की कोई विशेष कल्पना न थी। नबी किसे कहते हैं, इसके गुण क्या हैं? आदि वे बिल्कुल न जानते थे। अतएव हुज़ूर (सल्ल०) पर

ईमान न लाने के लिए उनकी यह विवशता हो सकती थी, लेकिन यहूदियों के लिए ऐसा करना भी संभव न था। मूसा के बाद उनमें बराबर पैग़म्बर आते रहे। जिस क़ौम में इतने पैग़म्बर लगातार आए हों, उसके लिए यह कह कर बच निकलना कैसे संभव होगा कि नुबूवत के गुणों को हम नहीं जानते। इसके बावजूद अगर वे मुहम्मद (सल्ल०) की नुबूवत का इंकार करते हैं, तो इससे स्पष्ट होता है कि भूतपूर्व पैग़म्बरों पर भी उनका ईमान सच्चा न था। भूतपूर्व पैग़म्बरों पर उनका ईमान सच्चाई की खोज पर आधारित न था, बल्कि पुरखों के अन्धानुकरण का फल था। सच्चे नबी की निशानियों को न जानने के कारण जब उनके पास प्यारे नबी (सल्ल०) आए तो उन्हें ईमान का सौभाग्य प्राप्त न हुआ, पर हम देख सकते हैं कि उन्होंने शुरू ही में हुज़ूर (सल्ल०) का विरोध नहीं किया।

मदीने में यहूदियों के तीन क़बीले रहते थे—बनू क़ैनक़ाअ, बनू नज़ीर, बनू क़ुरैज़ा। इसके अतिरिक्त उनकी कुछ शाखाएं भी मौजूद थीं। नबी (सल्ल०) ने मदीना में आते ही राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए एक समझौता तैयार किया जिसे 'मदीना राज्य का भौतिक संविधान' नाम दिया जा सकता है, जिसमें मुहाजिर-अंसार और यहूदी क़बीलों के अधिकार तथा कर्तव्य उनकी इजाज़त और अनुमति से सविस्तार लिखे गये थे। ऐसा इसलिए किया गया कि बाद में किसी प्रकार का संदेह या भ्रम न पैदा हो सके।

इस समझौते की धाराएं पर्याप्त हैं, जिसमें से वार्ता से संबंधित धाराओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. यहूदी मुसलमानों के साथ एक राज्य के नागरिक के रूप में रहेंगे। यहूदी अपने और मुसलमान अपने धर्मानुसार जीवन बिताने के अधिकारी हैं। कोई अगर जुल्म करे या समझने का विरोध करे तो उसकी ज़िम्मेदारी केवल उस पर और उसके परिवार पर होगी।

२. जब तक दोनों मिलकर युद्ध करेंगे। मुसलमानों की तरह

यहूदी भी ख़र्चे का बोझ उठाएंगे।

३. इनमें से कोई भी मुहम्मद (सल्ल०) की अनुमति के बिना युद्ध के लिए नहीं जाएंगे।

४. यहूदी अपना ख़र्च और मुसलमान अपना ख़र्च वहन करेंगे।

५. इस समझौते में यदि किसी के विरुद्ध कोई लड़ाई हो, तो मुसलमान और यहूदी एक दूसरे का साथ देंगे और इस सम्बन्ध में फ़ैसला करने के लिए एक दूसरे से मश्विरा करेंगे और सहानुभूति दिखाएंगे तथा समझौते की पाबन्दी करेंगे, उसके विरुद्ध नहीं।

६. इस समझौते में सम्मिलित व्यक्ति की आपस में कोई हत्या या झगड़ा हो जाए, जिससे दोनों फ़रीक़ों में झगड़ा या संदेह पैदा होने की आशंका होने लगे, तो अल्लाह के क़ानून और रसूल के निर्णय के अनुसार हल किया जाएगा।

७. क़ुरैश या उनकी सहायता करने वालों को किसी प्रकार का आश्रय न दिया जाएगा।

८. मदीना पर आक्रमण हुआ तो यहूदी और मुसलमान एक दूसरे की सहायता करेंगे।

समझौते की उपरोक्त शर्तों की रोशनी में निम्न बातें मालूम हुई—

(अ) मुसलमानों की तरह यहूदियों ने भी प्यारे नबी (सल्ल०) को अपनी राजनीतिक समस्याओं का निर्णायक मान लिया था। झगड़ों आदि में हुज़ूर (सल्ल०) के निर्णयों की कठोरता से पाबन्दी को स्वीकार कर लिया था।

(आ) यहूदी अपने धार्मिक मामलों में ही पूरी तरह स्वतन्त्र थे, लेकिन मुसलमानों के शत्रुओं को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायता पहुंचाने के अधिकारी वे न थे।

(इ) मदीने पर आक्रमण होने की स्थिति में देश की सुरक्षा के लिए मुसलमानों से मश्विरा करना और कंधे से कंधा मिला कर लड़ना, यहूदियों का कर्तव्य था। यहूदियों का सैनिक ख़र्च वे स्वयं

सहन करेंगे जब तक लड़ाई चलती रहेगी, अपने सामरिक व्यय उन्हें स्वयं सहन करने होंगे।

(इब्ने हिशाम, भाग २, पृ० १४२-१५०)

स्पष्ट है कि यह समझौता यहूदियों की पूर्ण सहमति तथा अनुमति के बिना लागू नहीं हो सकता था। इससे जान पड़ता है कि न केवल यह कि वह मुसलमानों का विरोध नहीं करेंगे, बल्कि मुसलमानों से मिल कर एक राष्ट्रवी बनाने के लिए वे तैयार थे। पर शीघ्र ही उनका दृष्टिकोण बदल गया और नाना प्रकार के संघर्ष छोड़ने तथा षढ़यंत्र रचने की शुरूआत उन्होंने कर दी।

यहूदियों के विरोध के कारण

यहूदी शिक्षा, मान-सम्मान, सत्ता धन, तथा संगठन की दृष्टि से मदीना के अरबों से कहीं अधिक आगे थे। मदीना के क़बीले औस और ख़ज़रज को आपस में लड़ा कर 'फूट डालो, राज्य करो' को नीति पर अमल कर रहे थे। मजबूरी के वक़्त अरब उनसे ऋण लेते थे, इनसे भी उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि होती थी।

इन्हीं परिस्थितियों में मक्का के ग़रीब निर्धन मुसलमान मदीना हिजरत कर गये। यहूदियों ने इस बात को कुछ अधिक महत्व न दिया। उनका विचार था कि मुसलमानों की हिजरत से उनकी 'प्रजा' की संख्या बढ़ी है। इसलिए कि वे जानते थे ये ग़रीब मुसलमान किसी भी रूप में इन यहूदियों पर आक्रमण न कर सकेंगे। इस के बाद जब नबी (सल्ल०) मदीना तश्रीफ़ लाए, तो हुज़ूर (सल्ल०) के प्रभाव को भी अपने पक्ष में इस्तेमाल करने के लिए उन्होंने हुज़ूर (सल्ल०) से मिल-जुल कर रहना शुरू किया, लेकिन जल्द ही उनको मालूम हो गया कि उन्होंने शक्ति से अधिक का भार उठा लिया है, उनके जाल में फंसने के लिए हुज़ूर (सल्ल०) या तमाम मुसलमान तैयार न थे। यहां से विरोध का आरम्भ होता है।

१. बनू क़ैनक़ाअ

शहर के बीच 'मुसल्ली' नामी जगह के क़रीब बनू क़ैनक़ाअ रहते थे। उनके दो छोटे क़िले थे। आजीविका की दृष्टि से ये न जागीरदार थे और न ही पूंजीपति, मात्र श्रमिक थे। सुनार का काम वह आमतौर पर करते थे। उन्होंने अपना एक मार्केट भी बना लिया था। देश का कारोबार धीरे-धीरे उनके चंगुल में आता गया। तीन यहूदी क़बीलों में ये अपेक्षतः शक्तिवान तथा मान-सम्मान वाले, थे, अपनी शक्ति तथा धन पर उन्हें गर्व था, शायद इसी भाव ने उन्हें सबसे पहले समझौते को भंग करने पर उतारू कर दिया।

बद्र की लड़ाई के बाद सन् ६३६ में एक बार हुज़ूर (सल्ल०) ने उनसे बातचीत की, तो (हुज़ूर सल्ल० से बड़ी) अशिष्टता का व्यवहार किया। इस सम्बन्ध में हुज़ूर (सल्ल०) ने चेतावनी दी कि 'ख़ुदा से डरो।' (बद्र) में क़ुरैश पर जो कुछ हुआ, इस तरह का अल्लाह का प्रकोप आने से डरो। मैं तुमसे केवल भलाई चाहता हूं, तुमको तो अच्छी तरह मालूम है कि मैं वही पैग़म्बर हूं जिसका तुम्हारी किताबों में उल्लेख हुआ है और इस्लाम स्वीकार करो। मेरा पालन करने का आदेश अल्लाह आपको दे रहा है।'

रसूल (सल्ल०) की इस सीख का उत्तर उन्होंने तीखे स्वर में दिया कि तुम्हारे बराबर के, मुक़ाबले के लोग, हम हैं, किसी ऐसी क़ौम से, जिसे सामरिक दक्षता नहीं प्राप्त थी, बद्र में तुमने युद्ध जीत लिया, तो इससे तुम्हें भ्रम हो गया है, लेकिन ख़ुदा की क़सम! जब हम से मुक़ाबला होगा, तो हम बता देंगे कि मर्द किसे कहते हैं।

(इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० ५०)

यह गर्व तथा अभिमान कुछ दिनों तक उनके दिलों पर छाया रहा और निम्न घटना के समय खुल कर सामने आ गया।

एक दिन कुछ ख़रीदने के लिए एक मुसलमान औरत बनू क़ैन-क़ाअ के बाज़ार में गयी। एक सोने की दुकान से सामान ख़रीद कर

लौटते में एक यहूदी सुनार की दुकान में चढ़ आयी। यहूदी ने उन महिला से कहा कि अपना निक़ाब उठा दो। महिला ने इन्कार कर दिया, और उसने ग़फ़लत में उनके वस्त्र का एक सिरा पीछे से बांध दिया। इस प्रकार अचानक खड़े होने से उनका गुप्त स्थान खुल गया। यह देखकर यहूदी गुंडे ठहाका मार कर हंसने लगे और उस की खिल्ली उड़ाने लगे। वह यह अपमान न सहन कर सकी और सहायता के लिए ज़ोर-ज़ोर से चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया। निकट ही खड़ा एक मुसलमान यह सुन कर क्रोध की आग में जलने लगा। वह दौड़ा आया और तत्काल यहूदी की हत्या कर दी। बाज़ार यहूदियों का था, वे हर ओर से एकत्र हो गये और उन्होंने मिल कर उस मुसलमान को मार-मार कर ख़त्म कर दिया।

कांड की सूचना मिलते ही मुसलमान भड़क उठे और वे युद्ध के लिए एक दूसरे की सहायता मांगने लगे। अन्ततः युद्ध शुरू हो गया। हुज़ूर (सल्ल०) ने पहले बनू क़ैनक़ाअ के क़िले को घेर लिया। पन्द्रह दिन तक चले घेराव में विवश होकर यहूदी समझौते पर तैयार हुए। (इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० ५०)

सोचिए! ऐसी स्थिति में उनको कैसा कठोर दंड मिलना चाहिए था? उन्होंने जान-बूझ कर फ़ित्ना पैदा किया था। समझौते के अनुसार, यहूदी और मुसलमान एक राष्ट्र थे, अतएव मुस्लिम महिला को अपमानित करने से उन्हें गुंडों को रोकना चाहिए था, अपने ही आदमी को ऐसा करने का कठोर दंड देना चाहिए था, खुले बाज़ार में एक शिष्ट महिला का उपहास करना और उस पर ठहाका लगाना एक अमानवीय कर्म था तथा उनका अभिमान था। भावनाओं में आकर अगर इस मुसलमान ने यहूदी की हत्या भी कर दी थी, तो उन्हें समझौते के अनुसार हुज़ूर (सल्ल०) के पास निर्णय के लिए हाज़िर होना चाहिए था, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया, बल्कि वे सब मिल कर उस मुसलमान की हत्या कर देते हैं। इन तमाम बातों के बावजूद, जब यहूदी समझौते के लिए

तैयार हुए तो हुज़ूर (सल्ल०) ने स्वीकार कर लिया। निश्चित बात है कि उनके धन तथा अस्त्र पर मुसलमानों ने क़ब्ज़ा किया होगा, पर उनमें से एक भी इंसानी जान नहीं ली गयी।

(तबक़ाते इब्ने साद, १०२-१०६)

ख़ज़रज क़बीले का सरदार अब्दुल्लाह बिन उबई बिन सलूल मुसलमानों में से था। बनू क़ैनक़ाअ इस क़बीले के मित्र थे। जब अब्दुल्लाह बिन उबई को सूचना मिली कि बनू क़ैनक़ाअ उक्त युद्ध में हथियार डाल चुके हैं तो वे हुज़ूर (सल्ल०) के पास आए और कहा कि बनू क़ैनक़ाअ हमारे मित्र हैं, अतः उनसे नम्रता का व्यवहार किया जाए। इब्ने हिशाम की रिवायत के अनुसार इस सिलसिले में अब्दुल्लाह का हुज़ूर (सल्ल०) के पास आगमन उस समय हुआ, जब हुज़ूर (सल्ल०) बनू क़ैनक़ाअ को उनके ज़ुल्म और समझौते को भंग करने की सज़ा देने का इरादा कर रहे थे और हुज़ूर (सल्ल०) ने मांग स्वीकार करते हुए उन्हें छोड़ दिया और शायद यों फ़रमाया कि जाओ उस व्यक्ति के लिए हम तुम्हें छोड़ देते हैं।

(इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० ५३)

लेकिन सुनन अबूदाऊद (किताबुल ख़िराज) से मालूम होता है कि इब्ने हिशाम का उपरोक्त कथन सही नहीं है, इसलिए कि जब आज्ञापालन का विश्वास दिलाने पर हुज़ूर (सल्ल०) ने उन्हें और उनके ख़ानदान की जान व माल को शरण दे दी थी तो ऐसी स्थिति में दूसरी सज़ा देना अविश्वसनीय है।

फिर ७०० व्यक्तियों का यह क़बीला मदीना छोड़ कर फ़लस्तीन चला गया। जाते वक़्त हुज़ूर (सल्ल०) ने सामरिक हथियारों के अलावा तमाम चीज़ें ले जाने की इजाज़त दे दी।

२. बनू-नज़ीर

बनू नज़ीर मदीने से बाहर दक्षिण पूर्व में रहते थे। वे ज़मींदार और व्यापारी थे। क़ुरैश के साथ उनका स्थायी रूप से व्यापार

रहता था। 'बेरे मओन' कांड बनू नज़ीर कांड का अन्तिम भाग है इसीलिए उसका उल्लेख करना यहां ज़रूरी समझा जाता है।

सन् ४ हि० में बनू आमिर क़बीले का एक व्यक्ति अबू बरा आमिर बिन मालिक बिन जाफ़र प्यारे नबी की सेवा में उपस्थित हुआ। वह उस वक़्त मुसलमान न हुए थे। नबी (सल्ल०) ने आदत के मुताबिक़ उन्हें इस्लाम का संदेश पहुंचाया। उन्होंने न तो संदेश स्वीकारा और न इंकार ही किया, बल्कि हुज़ूर (सल्ल०) से निवेदन किया कि कुछ व्यक्तियों को मेरे साथ इस्लाम के प्रचार व प्रसार के लिए भेजें, जो सर्वप्रथम मेरे क़बीले को इस्लामी शिक्षाओं से परिचित करें। हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि मुझे नज्द वालों पर कुछ अधिक भरोसा नहीं है, तो आमिर ने विश्वास दिलाया कि आप भेजिए, उनकी सुरक्षा मेरे ज़िम्मे है, इस्लाम का संदेश मेरी जाति वालों तक भी पहुंचना चाहिए। (इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० ५२)

इस प्रकार मुन्ज़िर बिन अम्र (रज़ि०) के नेतृत्व में हुज़ूर (सल्ल०) ने चालीस साथियों को रवाना किया, इनमें से अधिकांश 'अहले सुफ़्फ़ा' थे, जो क़ुरआन कंठस्थ करने वाले उलेमा थे। सहाबा की यह मंडली बनू आमिर के इलाक़े बेरे मआन में दाख़िल हुई। हराम बिन मिल्ह को हुज़ूर (सल्ल०) का पत्र लेकर क़बीले के सरदार आमिर बिन तुफ़ैल के पास रवाना किया गया। आमिर इस्लाम का कट्टर शत्रु था। इससे पहले उसने हुज़ूर (सल्ल०) से एक समझौता करने की कोशिश की थी कि मरुस्थलीय भाग की मिल्कियत हुज़ूर (सल्ल०) को दे दी जाती है, शहर की मिल्कियत मेरी (आमिर बिन तुफ़ैल) और मेरी मौत के बाद मेरे उत्तराधिकारी की रहेगी। इस विश्वास दिलाने पर मैं इस्लाम स्वीकार करने को तैयार हूं। इस समझौते के लिए तैयार न हुए तो बनू ग़तफ़ान से मिलकर हुज़ूर (सल्ल०) से युद्ध करूंगा—ये थीं अमीर की शर्तें। (बुख़ारी, किताबुल मग़ाज़ी)

हराम बिन मिल्ह आमिर बिन तुफ़ैल के पास पहुंचे और हुज़ूर

(सल्ल०) का पत्र दिया। न केवल यह कि आमिर ने पत्र पढ़ने का कष्ट नहीं किया, बल्कि हराम (रजि०) को बेदर्दी से क़त्ल कर दिया और इसके बाद निकट के तमाम क़बीलों को जमा कर के इस्लाम के अनुयायियों को क़त्ल कर दिया। सौभाग्यवश दो व्यक्ति बच निकले, जिसमें से एक व्यक्ति का नाम अम्र हज़्मी था। वह मदीना वापस आ रहे थे कि रास्ते में बनू आमिर के दो व्यक्तियों को देखा। अम्र के साथियों के साथ बनू आमिर ने क्या कुछ किया था इससे उनका मन घायल था, अतएव उन्होंने अधिक कुछ विचार न किया। मौक़ा देखकर उन दोनों की हत्या कर दी। उन्हें मालूम नहीं था कि उन दोनों के पास हुज़ूर (सल्ल०) की अनुमति तथा पत्र मौजूद हैं। अम्र ने रसूल (सल्ल०) के दरबार में पहुंच कर तमाम घटनाएं सुनायीं।

रसूल (सल्ल०) ने यों फ़रमाया—'आपने इन निरपराध व्यक्तियों का खून किया, अब उनके परिवार को खून बहा देना ही पड़ेगा। (इब्ने हिशाम, भाग २, पृ० १४-१५)

बनू आमिर और यहूदी क़बीला बनू क़ैनक़ाअ आपस में मित्र थे। दूसरी ओर हुज़ूर (सल्ल०) और बनू नज़ीर के समझौते के अनुसार खून बहा अदा करने में बराबर के शरीक क़रार पा रहे थे। ऐसी स्थिति में हुज़ूर (सल्ल०) ने बनू नज़ीर से खून बहा में अपना हिस्सा अदा करने का वायदा भी किया। समझौते के होते हुए वे अदा करने से इन्कार भी न कर सकते थे, लेकिन उन्होंने टाल-मटोल करना शुरू कर दिया। एक बार हुज़ूर (सल्ल०) कुछ साथियों के साथ बनू नज़ीर के पास गये। उन्हें सूचित किया कि इस खून बहा में जो राशि तुम्हें देनी है, उसके लिए आए हैं, लेकिन उन्होंने खामोशी से हुज़ूर (सल्ल०) की हत्या का कार्यक्रम बनाना शुरू किया। कुछ यहूदियों ने कहा, 'यह मौक़ा सही है। इस छत पर से मुहम्मद (सल्ल०) के सर पर पत्थर गिरा कर क़त्ल करते हैं। तो हमें इनकी दुष्टाओं से (अल्लाह की पनाह) मुक्ति मिलेगी।

शत्रु के इस छल-कपट की सूचना हुज़ूर (सल्ल०) को हो गई। अपने साथियों से कुछ न कहा, इसलिए कि हुज़ूर (सल्ल०) को ख़तरा महसूस हो रहा था कि यहूदियों को अगर अपने भेद के खुल जाने का संदेह होगा तो वे खुल्लमखुल्ला लड़ाई पर उतारू हो सकते हैं, अतएव वहां से वह चुपके से निकल आए। स्थिति की जटिलता बताने की आवश्यकता नहीं, इसलिए इसमें आश्चर्य नहीं कि आपने अपने साथियों को वहीं छोड़ा और स्वयं निकल आए। ऐसा हुज़ूर (सल्ल०) ने इसलिए किया कि शत्रु को मुसलमानों की उपस्थिति का एहसास रहे, वरना वे पीछा भी कर सकते हैं। अधिक समय न हुआ कि आपके साथी भी वापस आ गये।

(इब्ने हिशाम, भाग ५, पृ० १६६-२००)

पर राष्ट्र-द्रोह के इस भयानक अपराध पर हुज़ूर (सल्ल०) ने कोई कार्यवाई नहीं की।

वनू नज़ीर का औस क़बीले से समझौता था, अतएव औस क़बीले के मुहम्मद बिन मुस्लिम (रज़ि०) को निम्न संदेह देकर वनू नज़ीर के पास भेजा कि दस दिनों के भीतर तुम्हारे क़बीले के तमाम व्यक्तियों को मदीना छोड़ कर जाना होगा, अपने साथ तमाम चल सम्पत्ति ले जा सकते हो। हर साल अपने खजूर के बाग़ से फल निकालने की तुम्हें स्वतन्त्रता है।

यहूद को विश्वास हो गया कि हमें अपने मित्र क़बीले औस से कोई सहायता न मिल सकेगी, अतएव वे इन शर्तों को मानने पर तैयार थे, लेकिन मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) के सरदार अब्दुल्लाह बिन उबई बिन सलाल और उसके साथियों ने पूरा यत्न किया कि यहूदी मदीना छोड़ कर न जाएं और उनको प्रोत्साहित करते रहे कि धीरज से काम लो, तुम्हें जब जाने का अवसर आएगा तो हम तुम्हारे साथ रहेंगे। हम तुम पर आंच न आने देंगे। अगर तुम युद्ध करोगे, तो भी हम तुम्हारा साथ देंगे।

(सूरः हश्र ५८, आयत ११, इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० २००-२०१)

नबी (सल्ल०) की बतायी हुई शर्तों पर समझौता करने के लिए बनू नज़ीर के समझदार तथा साहसी व्यक्तियों ने विचार-विमर्श किया, लेकिन क़बीले का सरदार हुई बिन अख़तब, साथी क़बीला बनू क़ुरैज़ा से सहायता मिलने की उम्मीद पर मुक़ाबले के लिए तैयार हो गया और इस प्रकार वे क़िले का द्वार बन्द करके भीतर इकट्ठा हो गये ।

पर मुनाफ़िक़ और बनू नज़ीर कुछ दिनों तक सहायता की आशा में पड़े रहे, लेकिन इस ओर से सिर्फ़ ख़ामोशी दीख पड़ी। अन्ततः उन्होंने हथियार डालने का निर्णय कर लिया और हुज़ूर (सल्ल०) को सूचित किया कि अगर प्राणों की सुरक्षा मिल जाए, तो हम मदीना छोड़ कर जाने के लिए तैयार हैं। हुज़ूर (सल्ल०) ने इस बात को स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त हर एक व्यक्ति को अपने ऊंट पर जितना सामान लाद सके, ले जाने की अनुमति दे दी ।

देखिए, उनके करतूत और उस महान व्यक्ति की दयाशीलता।

बनू नज़ीर मदीना छोड़ कर ख़ैबर चले गये, उनसे किये गए वायदे पूरे किये गए, यहां तक कि वे अपने साथ घर के दरवाज़े तक उखाड़ ले गए, किसी ने उफ़ तक न किया। इस प्रकार वे ६०० ऊंटों पर जितना सामान ज़बरदस्ती लाद सके, अपने साथ ले गये, बल्कि वे जुलूस निकालने के अंदाज़ में रवाना हुए। दफ़, बांसुरी, नृत्य, मानो इस तरह से निकले कि देखने वाला कोई उन्हें कह नहीं सकता था कि उन्हें निकाल दिया गया है।

(इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० २०१)

उस समय एक घटना घटित हुई, जो इस्लामी सहनशीलता की श्रेष्ठ मिसाल है ।

मदीना के मुश्रिकों में एक रस्म थी कि यदि कोई व्यक्ति निःसंतान रहे या किसी विपत्ति में पड़ जाए, तो वह मनौती चढ़ाता था कि अगर बच्चा हुआ या विपत्ति टल गयी तो अपने बच्चों को

यहूदी धर्म में दाखिल करेगा। इस रस्म के अनुसार वे मां-बाप जिन्होंने इस मन्नत पर अमल किया था जब मुसलमान हो गये और उनकी सन्तान यहूदियों के यहां पल-बढ़ रही थी, उनके लिए एक समस्या पैदा हो गयी। बनू नज़ीर मदीना छोड़ कर जाने लगे तो उन्होंने इन नये यहूदियों को अपने ही साथ ले जाने का निर्णय किया, लेकिन मां-बाप इसमें बाधा बन गये। समस्या हुज़ूर (सल्ल०) के सामने आयी तो आपने फ़रमाया धर्म के मामले में ज़बरदस्ती नहीं।

इस प्रकार पहले के समझौते के अनुसार यहूदियों को पूर्ण स्वतन्त्रता मिली रही, जबकि वे अवसर मिलते ही समझौते को भंग कर दिया करते थे, पर मुसलमान एक बार भी समझौते के विरुद्ध कार्य करें, यह हुज़ूर (सल्ल०) को सहन नहीं हो सकता था।

इस प्रकार वे उन तमाम युवकों तथा बच्चों को लेकर रवाना हो गये। (सुनने अबू दाऊद, किताबुल जिहाद)

उस समय मदीना में संगठित यहूदी क़बीला एक ही रह गया था। बनू क़ुरैज़ा। यह बनू नज़ीर का क़रीबी रिश्तेदार था और उसकी दो शाखाएं बनू काब और बनू अम्र थीं। 'मदीना' नगर के दक्षिण में ये लोग रहते थे, आजीविका खेती थी। पैदावार बेचने के कारण ये धनी तथा समृद्धिशाली थे। दूसरे क़बीलों की तरह ये लोग भी नबी (सल्ल०) से द्वेष तथा शत्रु-भाव का मामला करते थे, लेकिन यह बात इतनी खुलेआम न होती थी। दूसरे दो क़बीलों के मदीना छोड़ने के बाद में भी ऐसी नीति अपनाने लगे जो उनके लिए अति विनाशक थी, अतएव पहली से अधिक शिक्षाप्रद परिणामों का सामना करना पड़ा।

मदीना छोड़कर ख़ैबर जाने वाले बनू नज़ीर क़बीलों के सरदारों में हुई बिन अख़तब और सलाम बिन अबी हक़ीक़ और उनका भांजा कनाना बिन रबीअ की गिनती होती थी। उनकी धार्मिक हैसियत भी बहुत बढ़ी हुई थी। उपरोक्त सरदारों का ख़ैबर वालों

ने सहर्ष स्वागत किया और उन्हें अपना सरदार मान लिया, लेकिन इन पदों से उनके दिल की आग न बुझ सकी । देश-परित्याग तथा अपमान का उन्हें बड़ा एहसास था। अतएव बैर तथा शत्रुता थी। मुसलमानों से बदला लेने के लिए उनके मन विकल थे। अतएव हुई बिन अखतब हर जगह मुसलमानों के विरुद्ध बैर-भाव फैलाने लगा। इन सब का परिणाम यह हुआ कि सन् ०५ हि० में चारों ओर के तमाम अरब क़बीले मिलकर मदीना पर हमलावर हुए। इन शत्रुओं की संख्या विभिन्न कथनों के अनुसार दस हज़ार से बीस हज़ार तक थी। यदि हम कम से कम संख्या अर्थात दस हज़ार ही मान लें, तब भी उसकी स्थिति की विकटता को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है, इसलिए कि उस समय मुहाजिरों और अंसार की संख्या तीन हज़ार से अधिक बिल्कुल न थी। इसी युद्ध को इतिहास में 'अहज़ाब' या खंदक़ के नाम से याद किया जाता है। युद्ध का विवेचन इस लेख का अंश नहीं है। उम्मुल मोमिनीन, उम्मे सलमा के शब्दों में, इससे अधिक चिन्ताजनक तथा चकित कर देने वाली कोई विपदा नहीं जिसका मुक़ाबला प्यारे नबी (सल्ल०) को करना पड़ा।

स्थिति की जटिलता का अनुमान इस कथन से किसी सीमा तक लगाया जा सकता है, पर अरब क़बीलों से अधिक कष्ट प्यारे नबी (सल्ल०) को यहूदी क़बीले से पहुंचा। क़ुरैशी सेना टिड्डियों की तरह हमलावर हुई, यों हुई विन अख़तब ने बनू क़ुरैज़ा के क्षेत्र में जाकर उन्हें मुसलमानों के विरुद्ध भड़काया। बनू क़ुरैज़ा के सरदार काब बिन असद का साहस बढ़ाते हुए कहा कि इस हमलावर महान सेना से मिलकर मुसलमानों को नष्ट करने का जो सुअवसर हाथ आया है, फिर कभी न आएगा। काब ने पहले इंकार करते हुए गुस्सा दिखाया कि मुहम्मद की ओर से आज तक किसी प्रकार भी समझौते के ख़िलाफ़ कोई कार्य नहीं किया गया, ऐसी स्थिति में हम किस प्रकार उसका विरोध कर सकेंगे। लेकिन हुई ने काब को लालच दिलाया 'कौन-सा समझौता ? कहां के मुसलमान ? पूरा

अरब जगत, देखो आज उनके विरुद्ध एक जगह एकत्र हो चुका है, ऐसा दिन आ रहा है कि मुसलमानों का नाम व निशान तक बाक़ी न रहेगा। ऐसी स्थिति में समझौता भंग करने वालों पर आपत्ति करने वाला ही कौन रह जाएगा ? अतएव ऐसे उचित अवसर को किसी प्रकार छोड़ो नहीं। इस टिड्डी दल सेना का साथ दो, मुसलमानों को हमेशा के लिए नेश्त व नाबूद किया जा सकता है। काब हुई के जाल में फंस गया और उसकी मदद का वायदा कर दिया। नबी (सल्ल०) को यह ख़बर पहुंची। तब आपने वास्तविकता जानने के लिए कुछ साथियों को वहां रवाना किया। उन्होंने जाकर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का समझौता काब को याद दिलाया, तब उसकी गर्वोक्ति थी—

कौन अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ! हम नहीं जानते। मुहम्मद में और हम में कोई समझौता नहीं है और न मित्रता।

(इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० २३१-२३३)

परेशानी कितनी बढ़ गयी होगी, इसका इस बात से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि बाहरी दुश्मनों के मुक़ाबले में ये अन्दर के दुश्मन कितनी हानि पहुंचा सकते हैं। उनका निवास नगर के उत्तरी हिस्से में था और मुसलमानों के पिछले हिस्से में। अतः अल्लाह के रसूल और मुसलमास सदैव डरते थे कि न जानें कब उस ओर से आक्रमण हो जाए, कुछ नहीं तो वे औरतों और बच्चों को ही परेशान करने पर उतारू हो सकते हैं।

एक दिन यह आशंका सत्य सिद्ध हो गयी।

औरतों को अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने सुरक्षा के लिए बनू क़ुरैज़ा के निकट के एक किले में भेज दिया था। शत्रु सेनाओं से मुसलमानों की शक्ति तथा एकाग्रता को समाप्त करने के लिए उन्होंने औरतों पर आक्रमण करने का निर्णय कर ही लिया। किस दिशा से आक्रमण होना चाहिए, इसकी टोह लेने के लिए उन्होंने एक जासूस रवाना किया। प्यारे नबी (सल्ल०) की फूफी हज़रत

सफ़िया (रज़ि०) भी औरतों में मौजूद थीं। उन्होंने जासूस को देख कर क़िले के रक्षक हज़रत हस्सान बिन साबित (रज़ि०) उस युग के प्रसिद्ध अरबी कवि से कहा कि, 'क्या देख रहे हो? जल्दी जाओ और इसकी हत्या कर दो। वरना वह जाकर अपने साथियों को आक्रमण पर उभारेगा।'

हस्सान किसी रोग के कारण लड़ने से विवश थे। उन्होंने अपनी विवशता प्रकट की, तो हज़रत सफ़िया (रज़ि०) स्वयं जीवन या मृत्यु का दृढ़ निश्चय करके उसके मुक़ाबले के लिए तैयार हुई और उसके सर पर डंडे से एक प्रबल चोट लगायी और उसे मौत के घाट उतार दिया, फिर उन्होंने उसका सिर तन से जुदा कर उस ओर दीवार के बाहर फेंका, जहां यहूदी रहते थे। यहूदी कटे सिर को देख कर डर गये और यह सोच कर और भयभीत हुए कि औरतों की रक्षा के लिए मुस्लिम सेना मौजूद है और इस प्रकार यहूदी ने अपने इस दुर्विचार को छोड़ दिया।

(इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० २२९)

अल्लाह ने शत्रुओं के लिए बिल्कुल प्रतिकूल स्थिति पैदा कर दी। उनमें अविश्वास तथा फूट बढ़ गयी। एक महीने तक मदीने का घेराव करके शत्रु नाकाम वापस हुए।

इस विपत्ति से मुक्ति मिलने वाले दिन ही हुज़ूर सल्ल० ने बनू क़ुरैज़ा के ख़िलाफ़ क़दम उठा लिया और उनका क़िला घेर लिया इस स्थिति में काब बिन असद ने अपनी क़ौम से कहा, मित्रो! मैं तुम्हारे सामने तीन बातें रखता हूं, जिसमें से एक तुम्हें स्वीकार करनी होगी—

एक यह कि हम उस पर ईमान लाए। तुम्हें इतने दिनों में यह तो विश्वास हो ही गया है कि यह एक सच्चा पैग़म्बर है। हमारे ग्रन्थ में उनके आगमन की शुभ सूचना भी तो दी गयी थी। लेकिन बनू क़ुरैज़ा ने इसे मानने से इंकार कर दिया। उन्होंने निर्णायक ढंग में कहा कि हम तौरात छोड़कर किसी और ग्रन्थ को स्वीकार

करने के लिए तैयार नहीं हैं। यह सुन कर काब ने यों कहा, वरना हम अपनी तलवार से अपने बाल-बच्चों का क़त्ल करेंगे और फिर मुहम्मद से युद्ध करेंगे, अल्लाह हमारे और मुहम्मद के मध्य निर्णय कर देगा। हम यदि नष्ट भी हो गये, तो अपने बेटे-पोतों के बारे में अफ़सोस न होगा। अर्थात ज़िन्दा रहने की शक्ल में बाल-बच्चे फिर भी हो सकते हैं। यह है दूसरी बात।

यह सुन कर लोगों ने उत्तर दिया, 'इन बेचारों की हत्या करके हम जीवित क्यों रहें ?'

तब काब ने तीसरी बात सामने रखी।

आज शनिवार की रात है। आज मुसलमान हमारे बारे में सन्तुष्ट होंगे। आइए ! रात के अंधेरे में हम उन पर हमलावर होते हैं, शायद कि हमें सफलता मिल जाए।

यह सुन कर उन्होंने कहा कि, क्या हम अपने ही हाथों शनिवार के दिन की पावनता समाप्त करें, ऐसा कभी नहीं हो सकता।

काब ने गुस्से में कहा, तुम्हारे दिमाग़ ख़राब हो गये हैं, अब जो चाहो करो।, (इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० २४६-४७)

तात्पर्य यह कि यहूदियों ने मुसलमानों के घेराव के मुक़ाबले का निर्णय किया। एक महीना के घेराव के बाद उन्होंने हुज़ूर (सल्ल०) को बताया कि साद बिन मुआज़ जो निर्णय करें, हम उसे स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। साद (रज़ि०) औस क़बीले के सरदार थे। औस और बनू क़ुरैज़ा आपस में मित्र थे, अतएव निश्चित है कि वह हज़रत साद (रज़ि०) से सहानुभूति की आशा रखते थे। नबी (सल्ल०) ने उनकी इस शर्त को स्वीकार कर लिया और घेरा वापस ले लिया। (बुख़ारी)

बनू क़ुरैज़ा का अपराध ऐसा न था कि उसे जल्द क्षमा कर दिया जाता।

इसके अतिरिक्त बनू नज़ीर को देश निकाला देते ही पुराने समझौते का नवीनीकरण किया गया था, जिसमें विशेष स्पष्टीकरण

था कि मदीने पर आक्रमण हो तो हम मुसलमानों से मिल कर युद्ध करेंगे और जिस हद तक हो सके, हर प्रकार की तैयारियां और सहायता करेंगे, पर सहायता तथा सहयोग तो दूर की बात, उन्होंने छल-कपट, उद्दंडता तक तथा समझौते के खिलाफ़ हर सीमा को खन्दक़ की लड़ाई के मौक़े पर पार कर दिया था। उपरोक्त समझौते में शर्त रखी गयी थी कि हर एक फ़रीक़ को अपने धर्म के अपनाने में स्वतन्त्रता दी जाएगी। इस समझौते के तहत जब कोई यहूदियों का मामला हुज़ूर (सल्ल०) तक पहुंचाया जाता, तो आप तौरात के अनुसार निर्णय करते थे।

हज़रत साद (रजि०) ने सबसे पहले यहूदियों और नबी (सल्ल०) से वायदा लिया कि मैं जो कुछ भी निर्णय करूं, उसे फ़रीक़ों को मंजूर करना होगा और बाद में कहा कि, 'तौरात की शिक्षाओं के अनुसार हर बालिग़ मर्द क़त्ल किया जाए, उनकी बीवियों और बच्चों को सामरिक अपराधी के रूप में क़ब्ज़े में कर लिया जाये और उनकी दौलत, लड़ाई में हासिल किए हुए ग़नीमत का माल जान कर सेना में बांट दी जाए। यह है उनके अपराध का दंड।'

देखिए तौरात में क्या लिखा है—

'जब तू किसी शहर के पास जंग करने जाएगा, तो शान्ति का प्रस्ताव रखना। वे अगर मातहती स्वीकार कर द्वार खोल देते हैं, तो उसमें की पूरी आबादी तेरी नौकर बनकर तेरी सेवा करेगी, पर यदि तेरा आज्ञापालक न बन कर लड़ने पर तैयार हो जाएं, तो तू उसे घेर ले, उसके मर्द सब तलवार से क़त्ल कर दिए जाएं, औरतों, बच्चों और जानवरों को और वहां की सब दौलत को अपने क़ब्ज़े में कर लो। तेरे ख़ुदा ने तेरे दुश्मनों से तुझे माल दिया है, उससे फ़ायदा उठा सकता है। (तकरार, २० : १०-१४)

इस प्रकार क़त्ल किए गये व्यक्तियों की संख्या विभिन्न कथनों के अनुसार चार सौ से लेकर ७०० तक थी, एक औरत भी इसमें

शामिल है, जिसने एक मुसलमान के सर पर पत्थर मार कर उसे शहीद किया था। इसके बदले में उस औरत को क़त्ल कर दिया गया। हुई बिन अख़तब उस ससय तक बनू क़ुरैज़ा के साथ था, अतएव वह भी क़त्ल किया गया।

उपरोक्त सख्त सज़ा को दो महत्वपूर्ण कारणों के आधार पर निन्दनीय नहीं कहा जा सकता। एक कारण तो यह है कि यहूदियों की पवित्र किताब तौरात का भी यही निर्णय था। दूसरे उन्होंने स्वयं जिसको पंच चुना था, उसी का निर्णय है। इसी कारण यहूदियों ने इस निर्णय के विरुद्ध कोई स्वर नहीं उठाया। एस लाइन पाल इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखता है, उसे यहां पेश करना उपयुक्त होगा, वह कहता है--

'इसमें कोई संदेह नहीं कि यह निर्णय बहुत सख्त तथा ख़ून-खराबा करने वाला था। राजनीतिक पार्टी के विरुद्ध चर्च की भेज़ी हुई फ़ौज के कामों से या आगस्टीन के समय में की गयी कार्यवाही से इसमें बड़ी समानता है।'

पर एक बात यहां उल्लेखनीय है कि यहूदियों के अपराध की सज़ा, मुख्य रूप से सामरिक स्थिति में राज्य के विरुद्ध किये गये देश-द्रोह के अपराध का दंड था। जिस व्यक्ति ने लार्ड विलिंगडन के यात्रा-कथा में डाकुओं को पेड़ों पर फांसी दिये जाने के वर्णन को पढ़ा है उन्हें देश-द्रोही इन यहूदियों को तलवार की नोक से क़त्ल किये जाने पर आश्चर्य न होगा।

(लेसेक्शंस फ्राम दी क़ुरआन-लेनपूल, पृ० ६५)

लेकिन इससे यह न समझा जाए कि मदीना में इसके बाद एक भी यहूदी बाक़ी न रहा। वह मौजूद थे और इसकी गवाहियां भी मौजूद हैं। मिसाल के तौर पर बनू क़ैनक़ाअ को सन् ०२ हि० में देश निकाला दिया गया था, लेकिन ०३ हि० में उहद की लड़ाई के अवसर पर हम देखते हैं कि वे क़ुरैश के विरुद्ध रसूल (सल्ल०) की मदद का वायदा करते हैं। (इब्ने साद, भाग २, पृ० ३३-३४)

हम देख सकते हैं कि ख़ैबर की लड़ाई में बनू क़ैनक़ाअ ने हुज़ूर (सल्ल०) से मिल कर लड़ाई लड़ी और लड़ाई के बाद हुज़ूर (सल्ल०)ने उनको मुआवज़ा भी दिया।(बैहक़ी भाग ६, पृ० ५३)

बनू क़ैनक़ाअ का एक व्यक्ति रिफ़ाआ बिन सईद बनुल मुस्त-लिक़ की लड़ाई के बाद मदीने में मरा। (सहीह मुस्लिम)

यह बात तो अत्यधिक प्रसिद्ध है कि प्यारे नबी (सल्ल०) ने मृत्यु के समय अपनी कवच एक यहूदी के पास रेहन रखी थी।
(बुख़ारी)

इन साक्ष्यों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यहूदी फिर भी मदीना में रहते थे, बल्कि उन्हें व्यापार तथा स्वतन्त्र होकर लेन-देन की पूरी अनुमति थी।

उपरोक्त घटनाओं से हम इस नतीजे पर पहुंच सकते हैं कि तमाम यहूदियों को निर्वासित नहीं किया गया, बल्कि उनमें से जिस का देश-द्रोह सिद्ध हो गया उसे ही दंड दिया गया।

ख़ैबर

यद्यपि यहूदियों की दुष्टता से मदीना मुक्त हो गया था, लेकिन मदीना से सौ क़ोस दूर ख़ैबर नामक स्थान पर ये लोग एकत्र हो गये ने, अब जबकि उन्होंने फिर मुसलमानों के विरुद्ध ख़ुफ़िया सर-गर्मियां शुरू कर दी थीं, मुसलमान किस प्रकार शान्तिपूर्ण जीवन बिता सकते थे। ख़ंदक़ की लड़ाई से ही यह सिद्ध हो गया था कि ये इस्लामी राज्य के लिए सदैव शत्रु बने रहेंगे और मदीना की सुरक्षा किये बिना तमाम सेनाओं के साथ ख़ैबर रवाना होना भी संभव न था, इसलिए कि मदीना में सेना के न होने की सूचना से हो सकता है कि क़ुरैश या उनका मित्र क़बीला मदीना पर हमलावर हो। अतएव हुज़ूर (सल्ल०) ने निर्णय किया कि दोनों समस्याओं से निबटना चाहिए। हुदैबिया का समझौता इसी दूरदर्शिता का परि-णाम था। सन ०६ हि० में हुज़ूर (सल्ल०) ने सामयिक ढंग का

एक समझौता किया । इससे कम से कम दस वर्ष तक के लिए क़ुरैश के आक्रमण से रक्षा हो गयी ।

(इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० ३३१-३३२, बुख़ारी-मुस्लिम)

यह रसूल (सल्ल०) की राजनीतिक सूझ-बूझ सामरिक निपुणता तथा अथाह साहस की सफलता थी। क़ुरआन मजीद ने इसे 'स्पष्ट विजय' कहा है।

इस ओर से सन्तुष्ट हो जाने के बाद हुज़ूर (सल्ल०) ने ख़ैबर का रुख़ किया। वहां यहूदी अपने पैतृक मित्र क़बीलों से और क़बीला ग़तफ़ान से मिल गये थे और अस्त्रों से लैस होकर मदीना पर हमलावर होने का इरादा कर रहे थे। हुज़ूर (सल्ल०) ने सबसे पहले ख़ैबर और ग़िफ़ान के बीच रजीअ में इस्लामी सेना को जमा किया ताकि ग़िफ़ान से ख़ैबर वालों को सहायता न मिल सके। अतएव जब ग़िफ़ान वाले यहूदियों की सहायता के लिए निकले, तो उन्होंने देखा कि इस्लामी सेना उनके आंगन में पड़ाव डाले है और इस प्रकार वे वापस लौटने पर विवश हुए।

(तब्री, भाग ३, पृ० १५७५)

ख़ैबर पर आक्रमण लगभग एक महीने में पूर्ण किया। ख़ैबर के बड़े-बड़े सरदार और उच्च पदस्थ व्यक्ति युद्ध-स्थल ही में मारे गये। शेष यहूदियों को पहले की तरह ख़ैबर में रहने की अनुमति दी, जमीन पट्टे पर उन्हीं के हवाले की और फ़सल तैयार होने के समय किसी को भी ख़ैबर रवाना करते, जो निश्चित भाग लेकर मर्कज़ी बैतुल माल में जमा करता था। इसी युद्ध के बाद हुई बिन अख़तब की बेटी उम्मुल मोमिनीन सफ़िया (रज़ि०) हुज़ूर (सल्ल०) के हरम शरीफ़ में दाख़िल हुई।

ख़ैबर में एक यहूदी औरत ने आपको विष देने का यत्न किया। यह बनू नज़ीर क़बीले के सरदार सलाम बिन मिश्कम की बीवी ज़ैनबा थी। रसूल (सल्ल०) और सहाबा (रज़ि०) के लिए एक बकरी ज़िब्ह की। बकरी का कौन-सा भाग आप ज़्यादा पसन्द

क़रते हैं, उस ने पहले ही मालूम कर लिया था। जब उसे मालूम हुआ कि पाए हुज़ूर (सल्ल०) को अधिक पसन्द हैं तो उस पर मुख्य रूप से विष लगाया। हुज़ूर(सल्ल०) की सेवा में यह हिस्सा लाया गया। आपने पाए का एक भाग तोड़ लिया मुंह में डाल कर चबाया और यह कह कर थूक दिया कि इसमें विष है। औरत को बुला कर पूछा गया, तो उस ने अपराध स्वीकार करते हुए कहा कि, 'अपनी क़ौम को आपके बारे में बहुत-सी बातें कहते मैंने सुना है। अगर आप बादशाह हैं तो आपसे हमें निजात मिले और अगर आप नबी हैं तो अल्लाह की तरफ़ से आप को वह्य मिलेगी कि इसमें विष है, इसी लिए मैंने यह काम किया।'

यह सुनकर हुज़ूर (सल्ल०) ने उसे माफ़ कर दिया, लेकिन दो-तीन दिन बाद एक सहाबी का इस बकरी का मांस खा जाने के कारण देहांत हुआ तो जैनबा को बदले में क़त्ल कर दिया गया। यह विष हुज़ूर (सल्ल०) के मृत्यु-रोग का कारण बना।

(इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० ६५२-५३)

नबी (सल्ल०) यहूदियों से किस तरह पेश आए, इस का एक चित्र ऊपर प्रस्तुत किया गया। इन्हें आप ने पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की। मौलिक, राजनीतिक आधार दिए। किसी प्रकार का जिज़या या टैक्स उन पर लगाया नहीं, इस के बावजूद वे बार-बार वचन भंग करते रहे, अन्ततः उन्हें नसीहत दी कि सामान लेकर जहां चाहो, चले जाओ, वह भी उन व्यक्तियों को, जिनका अपराध स्पष्ट हो चुका हो, एक आदमी की ग़लती में इस के अतिरिक्त किसी और को दंड नहीं दिया जाता। बनू नज़ीर और बनू क़ैनक़ाअ के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की, तो इस का कारण यही था। वे मदीना छोड़ कर जा रहे थे, तो बिल्कुल शांति के साथ।

उपरोक्त दोनों क़बीलों से आंहज़रत अति सहानुभूति से पेश आये, वरन वे तो कठोर दंड के अधिकारी थे। बनू क़ुरैज़ा ने घोर उदंडता का परिचय दिया, तब भी यदि वे दयामूर्ति के सामने अपनी

समस्या रखते, तो उसका निर्णय न्यायसंगत ही होता, लेकिन उन्होंने रसूल (सल्ल०) से अधिक अपने साथी पर विश्वास किया, जबकि उस मित्र ने भी उन्हीं के क़ानून के अनुसार उनके विरुद्ध निर्णय सुना दिया।

मुनाफ़िक़

मुनाफ़िक़ का शाब्दिक अर्थ एक ओर से प्रवेश करके दूसरी ओर को निकल जाना है। इसीलिए अरबी में सुरंग को 'नफ़ख़' कहा जाता है। क्योंकि इसमें मनुष्य एक ओर से प्रविष्ट होकर दूसरी ओर निकल जाता है। मुनाफ़िक़ का ईमान सामयिक होता है। वह मोमिनों के मध्य अपने मोमिन होने की घोषणा करेगा, लेकिन वहां से अपने दोस्तों में चला जाए तो कुफ्र प्रकट करेगा। अतः ईमान उस में स्थाई रूप से रहता नहीं है। अन्दर प्रविष्ट होते ही निकल जाता है। इसी लिए उसे मुनाफ़िक़ कहा गया।

निफ़ाक़ एक बीमारी है। क़ुरआन में जहां मुनाफ़िक़ों का वर्णन हुआ है, वहां कहा गया है कि—

'उनके दिलों में बीमारी है।' तो इस का कारण भी यही है। निफ़ाक़ के दो कारण होते हैं। एक सन्देह, दूसरा कायरता। कुछ टीकाकारों ने उक्त स्थानों पर शब्द 'मर्ज़' का अनुवाद 'कायरता' ही किया है। मुनाफ़िक़ का सन्देह उसके सिद्धान्त में तथा कायरता सिद्धान्त को व्यवहार रूप देने में होती है। वह इस प्रकार सोचता है कि कहीं ऐसा न हो कि उसके विचार ठीक न हों। कहीं विचारों को प्रकट करने से लज्जित तो न होना पड़े? आन्दोलन सफल हुआ तो कहीं उसके लाभों से वंचित न कर दिया जाऊं?

इस्लाम जब तक मक्के में था, उस में निफ़ाक़ की गुंजाइश न थी। इसलिए कि उस समय इस्लाम स्वीकार करना और इस्लाम स्वीकार करने की घोषणा करना तलवार की नोक पर क़दम रखने से किसी तरह कम ख़तरनाक न था। इसलिए वहां सन्देह या भय

की गुंजाइश न थी। यहूदियों की तरह मुनाफ़िक़ों से भी मदीने में वास्ता पड़ा।

अब्दुल्लाह बिन उबई

मदीने के दो परिवार औस और ख़ज़रज ने आपस की लम्बी जंगों से तंग आकर निर्णय किया कि अब दोनों एक सरदार को चुन करके उस के नेतृत्व से एक साथ रहेंगे। उन्होंने एक होकर फ़ैसला किया कि भविष्य में तताम मामलों में इस व्यक्ति के नेतृत्व में चलेंगे और तमाम मदभेद में इसकी आज्ञा का पालन किया जायेगा। इस सरदारी के पद के लिए उन्होंने औस क़बीले के एक सरदार अब्दुल्लाह बिन उबई इब्ने सलूल को चुन लिया। उस के पद पर आसीन होने की तैयारियां की जा रही थीं।

इसी बीच हुज़ूर (सल्ल०) मक्के से हिजरत करके मदीना पहुंचे और दोनों क़बीलों के सरदारों ने हुज़ूर (सल्ल०) के सामने सर झुका दिए। इस प्रकार अब्दुल्लाह बिन उबई की ताजपोशी की कामना उसके मन ही में दब कर रह गयी। अब्दुल्लाह बिन उबई की अन्तिम समय तक यह कामना उससे जुदा न हुई कि 'अगर मुहम्मद (सल्ल०)न आते तो मैं आज क़ौम का बादशाह कहलाता। उस की दृष्टि में प्यारे नबी (सल्ल०) उस का पद लेने वाले व्यक्ति की हैसियत रखते थे।

शुरू में उसने इस्लाम स्वीकार न किया, हुज़ूर (सल्ल०) के भविष्य के बारे में वह जानना चाहता था। उस समय उसका अनुमान मुसलमानों से और विशेष कर रसूले करीम (सल्ल०) से था। उदाहरण के लिए एक घटना का वर्णन ही पर्याप्त होगा—

एक बार हुज़ूर (सल्ल०) क़बीला औस के सरदार साद बिन उबादा की बीमारपुर्सी के लिए जा रहे थे। रास्ते में अब्दुल्लाह बिन उबई अपने साथियों के साथ बैठा हुआ था। कुछ कहे बिना आगे बढ़ जाने को उचित न समझते हुए हुज़ूर (सल्ल०) अपनी

सवारी से उतर आए और सलाम करके उसके पास जाकर बैठे। अपनी आदत के अनुसार आपने कुछ आयतें पढ़ कर सुनायीं और उसे कुछ नसीहतें कीं। अब्दुल्लाह यह सब चुपचाप सुनता रहा। हुज़ूर (सल्ल०) ने अपनी बात समाप्त की तो उसने यह कहा कि आप जो कह रहे हैं यदि सही है तो इस से बढ़ कर कोई अच्छी बात नहीं, पर कृपा करके आप अपने मकान में तशरीफ़ रखें। अगर कोई आप के पास आए तो उपदेश दीजिएगा और अगर कोई आपके पास नहीं आता तो उसे परेशान नहीं करना चाहिए। जो सुनना नहीं चाहते उनके पास जाकर सुनाने की कोई आवश्यकता नहीं।

यह सुन कर हुज़ूर (सल्ल०) वहां से चल दिये, जब साद बिन उबादा के पास पहुंचे तो उन्होंने हुज़ूर (सल्ल०) के चेहरे पर ना-गवारी के चिह्न देख कर स्थिति जानना चाही तो हुज़ूर (सल्ल०) ने पूरी घटना सुनायी। साद (रज़ि०) ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०)! आप अब्दुल्लाह की बातों पर ध्यान न दें। अल्लाह की क़सम! हम उसे आपके आने से पहले अपना बादशाह बनाने ही वाले थे। वह समझता है कि ताज और तख़्त आपने छीन लिया। (इब्ने हिशाम, भाग २, पृ० २३४-२३८)

बाद में जब अल्लाह ने मुसलमानों को खुली हुई विजय दी तो अब्दुल्लाह बिन उबई और उसके साथियों ने समझा कि अब और प्रतीक्षा करने से हो सकता है कि अधिक हानि हो, इसलिए उन्होंने विवश होकर बैअत कर ली। यह बात बैअत ईमान के कारण नहीं थी बल्कि अवसरवादिता थी। वह जब तक जीवित रहा, यथा सम्भव हुज़ूर (सल्ल०) का उसने विरोध ही किया। हुज़ूर(सल्ल०) की राह में कठिनाइयां पैदा करने से वह कभी पीछे न हटा।

मुनाफ़िक़ों की ख़ुफ़िया सरगर्मियाँ

बद्र का युद्ध हिजरत के दूसरे वर्ष हुआ। इसके बाद के वर्ष उहद का युद्ध हुआ। चूंकि क़ुरैश बद्र के युद्ध में अपनी पराजय के अपमान

को समाप्त करने, अपने क़त्ल हुए व्यक्तियों का बदला लेने का निश्चय कर चुके थे, अतः उन्होंने युद्ध में अपनी पूरी शक्ति झोंक दी। नबी (सल्ल०) का इरादा था कि मदीने के अन्दर रह कर मुक़ाबला किया जाए।

अब्दुल्लाह बिन उबई का भी यही ख़्याल था, लेकिन जोशीले नौजवानों ने इस ख़्याल को रद्द कर दिया। उन्होंने आग्रह किया कि औरतों की तरह घर में बैठकर युद्ध करना उचित नहीं, बल्कि शहर से बाहर निकल कर मुक़ाबला होना चाहिए। अन्ततः इस वर्ग के सुझाव से नबी (सल्ल०) भी सहमत हो गये और शहर से बाहर जाकर मुक़ाबला करने का फ़ैसला किया। एक हज़ार आदमियों के साथ हुज़ूर (सल्ल०) रवाना हुए। क़ुरैश की सेना में सैनिकों की संख्या तीन हज़ार थी। जब हुज़ूर (सल्ल०) ने आधा रास्ता तय किया और शौत नामक स्थान पर पहुंचे तो अब्दुल्लाह बिन उबई अपने तीन सौ साथियों के साथ, यह कह कर कि नबी (सल्ल०) ने हमारी राय नहीं मानी और जान-बूझ कर मौत की ओर जाना हम नहीं चाहते, मदीना वापस हो गया। कुछ लोगों ने उसे उपदेश दिया कि इस प्रकार की आपातस्थिति में अपनी क़ौम और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की शक्ति कमज़ोर न करो, शत्रु हमारे सामने है, स्थिति की जटिलता को महसूस करो, अतः वापस न जाओ। लेकिन परिणाम कुछ न निकला। वह अपने आग्रह और हटधर्मी पर बिल्कुल अड़ा रहा इस तरह विपत्ति के समय में उसने मुसलमानों को धोखा दिया। (इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० ६८)

उहद में मुसलमानों को बहुत क्षति पहुंची। सहाबा (रज़ि०) में से कुछ विशेष व्यक्ति भी शहीद हुए, बल्कि नबी (सल्ल०) भी बुरी तरह घायल हुए। रसूल (सल्ल०) जब जुमे का ख़ुत्बा देकर बैठ जाते तो अब्दुल्लाह बिन उबई लोगों से यह कहा करता था कि लोगो! ये अल्लाह के रसूल हैं। इनके कारण अल्लाह ने हमें इज़्ज़त दी है। इनकी हर तरह से मदद करके मज़बूत करना हमारी ज़िम्मेदारी है।

यही उसकी लम्बे समय तक आदत रही। उहद की लड़ाई के बाद भी जब अब्दुल्लाह बिन उबई ये शब्द कहने के लिए उठा तो किसी ने उस का हाथ खींच कर उसे बिठाते हुए कहा कि ऐ अल्लाह के दुश्मन ! क्या तुझे शर्म नहीं आती, तू कौन-सी जुबान से हमें उपदेश देने जा रहा रहा है ? किस तरह का धोखा तूने दिया? क्या तुझे यह मालूम नहीं ? यह सुन वह क्रुद्ध अब्दुल्लाह बिन उबई मस्जिद से बाहर निकल आया। दरवाज़े के पास किसी ने उससे प्रश्न किया कि कहां जा रहे हो ? तो उसने उत्तर यह दिया कि मैं उस व्यक्ति के पक्ष में बोलने के लिए उठा था लेकिन उसके साथियों ने मेरा अपमान किया, मानो मैंने कोई अपराध किया हो।' दूसरे व्यक्ति ने कहा कि आइये ! नबी (सल्ल०) के पास चलते हैं, वे आपकी माफ़ी के लिए दुआ करेंगे,' तो उसने उत्तर दिया कि 'मैं नहीं आता और न मुझे उस व्यक्ति (नबी सल्ल०) की दुआ की आवश्यकता है।' (इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० १११)

उहद की लड़ाई के बाद बनू नज़ीर कांड के समय इसी अब्दुल्लाह बिन उबई और मालिक बिन नोफ़ल और साथियों ने उन्हें सूचना दी थी कि बिल्कुल न घबराओ, हम तुम्हारी हर प्रकार से सहायता करेंगे। इसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। इसी प्रकार की चेष्टाओं का परिणाम था कि वह घटना इतनी लम्बी हो गयी और बनू नज़ीर ने हथियार डालने से इन्कार कर दिया।

हिज्रत के पांचवें वर्ष ख़न्दक़ की लड़ाई हुई। दूसरों की तरह रसूल (सल्ल०) भी ख़न्दक़ खोदने और मिट्टी निकालने में भी भाग ले रहे थे। इस अवसर पर भी मुनाफ़िक़ वापस हो गये थे। भारी सर्दी का मौसम था, भूख और प्यास की अधिकता के होते हुए भी काम करना पड़ रहा था। मुसलमान सब्र और धैर्य के साथ रात-दिन काम करते रहे। उक्त कार्य में हिस्सा लेने से रोकने वाला कोई काम आ पड़ता तो रसूल (सल्ल०) से अनुमति लेकर चले जाते, लेकिन मुनाफ़िक़ों का अन्दाज़ इससे बिल्कुल भिन्न था। वे काम में

बहुत सुस्त थे। वे दूसरों की आंख बचा कर काम छोड़ कर भाग जाते थे और काम का नुक़सान करते थे।

युद्ध या दूसरी विपत्तियों के समय व्यक्तियों में एकता तथा साहस एवं शक्ति की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में जनता में भय और निराशा फैलाने वाली बातें फैलाना बहुत ही हानि-कारक होता है। युद्ध चाहे कितना ही लंबा हो जाए, लेकिन जब तक इन्सान में लगाव और साहस है वह युद्ध क्षेत्र में पीछे न हटेंगे और स्थिति पर क़ाबू पाकर विजय पाना सम्भव हो सकेगा। इस लिए युद्ध की स्थिति में भय और निराशा की बातें फैलाने वालों का देश द्रोही का दण्ड मिलता है।

मुनाफ़िक़ ऐसे समय पर भी मुसलमानों को हर प्रकार की हानि पहुंचाने की चेष्टा करते थे, जबकि युद्ध जारी हो। इब्ने हिशाम के शब्दों में—

ऐसे समय पर मुनाफ़िक़ मज़ाक़ करते हुए प्रश्न करते हैं कि 'हमसे वायदा किया गया था कि किसरा व क़ैसर के ख़ज़ाने हमें मिलेंगे और उधर यह स्थिति कि कोई लेट्रिन जाए तो इस का विश्वास नहीं कि वह वापस भी आएगा।' (इब्ने हिशाम)

बल्कि जब शत्रु का घेराव अधिक ज़ोर पकड़ गया तो मुनाफ़िक़ों में से एक-एक आकर कहने लगे कि हमारे घर असुरक्षित हैं। शत्रु उसमें प्रविष्ट हो जाएंगे। हमें घरों की सुरक्षा के लिए जाने की अनुमति दीजिए, जैसा कि क़ुरआन ने कहा कि 'यह वास्तव में युद्ध से भागने का उपाय था। उसका उद्देश्य केवल इतना ही नहीं था कि मुसलमानों की शक्ति कम हो, बल्कि जनता में भय और निराशा फैल जाए और इन तमाम बातों के बावजूद हुज़ूर (सल्ल०) ने उन्हें वापस जाने की अनुमति दे दी बल्कि जब अल्लाह ने उक्त विपत्ति से मुसलमानों को छुटकारा दिलाया, शत्रु स्वयं ही घेराव उठा कर चला गया। इसके पश्चात् भी रसूल (सल्ल०) ने मुना-फ़िक़ों से कोई पूछ-ताछ नहीं की।

हिजरत के छठें वर्ष बनू मुस्तलिक़ के विरुद्ध कार्यवाही की गयी ।[1] इस युद्ध में हुज़ूर(सल्ल०) भी सम्मिलित थे । इस्लामी सेना मरीसीअ झील के निकट पड़ाव डाले हुए थी । एक दिन एक अंसारी और मुहाजिर में झगड़ा हुआ । अब्दुल्लाह बिन उबई यह देख कर क्रुद्ध हुआ और कहा कि इन...मुहाजिरों ने हमारी नाक में दम कर दिया है । मदीने पहुंच कर इन ज़लीलों को वहां से बाहर कर देंगे और अपने मित्रों से यह कहा कि इस विपत्ति को तुमने आमन्त्रित किया था । तुम्हीं ने उन्हें अपने घरों में जगह दी । अपनी धन सम्पत्ति में भागीरदार बनाया । यदि तुम ऐसा न करते तो वे इस सीमा को न पहुंचते ।

हुज़ूर (सल्ल०) को सूचना मिली कि अब्दुल्लाह बिन उबई कह रहा है कि हम मदीना लौट जाएंगे । वहां से ज़लीलों को बाहर कर देंगे और यह कि ज़लीलों से तात्पर्य मुसलमान हैं ।

ऐसा सुनकर अब्दुल्लाह को क़त्ल करने का हज़रत उमर ख़त्ताब (रज़ि०) ने नबी (सल्ल०) से निवेदन किया । इसका हुज़ूर (सल्ल०) ने इस प्रकार उत्तर दिया कि उमर तुम यह चाहते हो कि लोग कहें कि मुहम्मद अपने ही आदमियों का क़त्ल करा रहा है ? नहीं, ऐसा कदापि न होगा ।

जब अब्दुल्लाह बिन उबई और मुसलमानों को मालूम हुआ कि उक्त मामले की हुज़ूर को ख़बर लग गयी है तो वे स्वयं हुज़ूर (सल्ल०) के पास आए । हुज़ूर (सल्ल०) ने पूछा कि उनके मूल शब्द क्या थे ? उन्होंने क़सम खाकर कहा कि इस प्रकार के कोई वाक्य हमने नहीं कहे हैं । हुज़ूर (सल्ल०) ने उसकी बात मान ली और मामले को रफ़ा दफ़ा किया । इसी कारण क़ुरआन ने स्पष्टी-

---

१. ख़ुज़ाआ क़बीले की एक शाख़ बनू मुस्तलिक मदीने पर हमला करने की तैयारी कर रहे थे । इसकी सूचना मिलने पर हुज़ूर (सल्ल०) ने उनके विरुद्ध यह कार्यवाही की ।

करण किया कि अब्दुल्लाह ने झूठ कहा है और उसने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है। हदीस भी मुनाफ़िक़ की पहचान यही बताती है कि 'वह बात करता है तो झूठ बोलता है।' (बुखारी, मुस्लिम)

जब यह बात बहुचर्चित हो गयी तो अब्दुल्लाह बिन उबई के लड़के ने (जिसका नाम भी अब्दुल्लाह था) हुज़ूर (सल्ल०) के पास जा कर निवेदन किया कि 'मैंने सुना है कि आप मेरे पिता की हत्या की अनुमति देने वाले हैं। मुझे डर है कि यदि कोई और इस काम को करता है तो मैं अपने क्रोध पर क़ाबू न पा सकूंगा, इसलिए मेरा निवेदन है कि क़त्ल करने की आज्ञा मुझे दें मैं स्वयं अपने पिता का सर आपकी सेवा में प्रस्तुत करूंगा।' हुज़ूर (सल्ल०) ने उन्हें तसल्ली दी और कहा कि 'जब तक तुम्हारे पिता हमारे साथ रहेंगे हम उनसे उदारता का व्यवहार करेंगे।'

(इब्ने हिशाम, भाग ३, पृ० ३०५)

'बनू मुस्तलिक़ की इस लड़ाई से वापसी के समय वह घटना सामने आई जो हुज़ूर की बीवी हज़रत आइशा (रज़ि०) पर आरोप लगाने का कारण बनी। इस झूठी, दुखद तथा खेदजनक घटना के पीछे भी इन्हीं मुनाफ़िक़ों का हाथ था। कुछ सीधे सादे मुसलमान भी इन मुनाफ़िकों के जाल में फंसकर इस सिलसिले में कुछ अनुचित कार्य कर बैठे थे, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि इस कांड में मुनाफ़िक़ों का ही हाथ था। इसके बावजूद हुज़ूर (सल्ल०) ने उन्हें क्षमा कर दिया। (बुखारी)

सन् ०९ हि० में मक्के पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् हुज़ूर (सल्ल०) ने रूम के विरुद्ध युद्ध करने के लिए रवाना होने की घोषणा की। यह है तबूक का युद्ध। ये कड़ी परीक्षा के दिन थे। देश में यहां से वहां तक अकाल पड़ा हुआ था। तीव्र गर्मी के साथ-साथ रास्ता भी लम्बा था। हुज़ूर (सल्ल०) हर बार युद्ध को रवाना होते समय लक्ष्य को गुप्त रखते थे, लेकिन दूरी का ख्याल करते हुए और तैयारी की दृष्टि से आपने सेना के कूच करने का

लक्ष्य भी स्पष्ट कर दिया था। इस युद्ध में भी मुनाफ़िक़, रोड़े अटका रहे थे।

आरम्भ में वे लोगों में भय और सन्देह पैदा करने लगे। वे अफ़वाहें फैलाते रहे कि 'इस गर्मी में इतना लम्बा सफ़र कैसे हो सकेगा। पहले ही से भुखमरी चल रही है ऐसे में सफ़र की तैयारी क्या ख़ाक करेंगे? आख़िर इतनी दूर जाने का उद्देश्य क्या है?' साधारणत: वे 'सुवैलम नामक' यहूदी के घर में इकट्ठा होते थे और लोगों को गुमराह करने की योजना बनाते थे। उनके बारे में सूचनाएं रसूल (सल्ल०) तत्काल ही प्राप्त कर लेते थे। यद्यपि आपने उनके साथ उदारता से काम लिया, लेकिन उनकी शरण-स्थली सुवैलम के मकान को आग लगाने का आदेश दे दिया।

इसके बाद वे रसूल (सल्ल०) के पास आए और क़सम खाकर अपनी विवशता व्यक्त करने लगे और हुज़ूर (सल्ल०) ने वतन ही में रहने की अनुमति स्वेच्छा से दे दी। जब सेना रवाना हुई तो अब्दुल्लाह बिन उबई और उसके साथी भी साथ हो लिए और पहली मंज़िल सनीयतुल विदाअ से ही वापस हो गये। मित्र और परिवार वाले, अपने रिश्तेदारों और साथियों को विदा करते समय सनीयतुल विदाअ तक जाया करते थे मुनाफ़िक़ों ने अपना पड़ाव मुसलमानों के पड़ाव से दूर दबाव नामक स्थान पर डाल लिया। शायद उनका उद्देश्य एकता की कमी देख कर मुस्लिम सेना में भय और निराशा फैलाना था, लेकिन मुसलमानों पर उनकी चालों का कोई प्रभाव न हो रहा था। दूसरे दिन जब सफ़र शुरू हुआ तो वे धीरे से मदीने वापस हुए। रसूल (सल्ल०) ने तबूक से लौट कर भी उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की।

अब्दुल्लाह बिन उबई का देहाँत

उक्त घटना के पश्चात् अधिक समय नहीं बीता था कि अब्दुल्लाह बिन उबई का देहांत हो गया। उसका बेटा अति निष्ठा-

वान तथा अल्लाह और उसके रसूल पर अपना प्राण तक निछावर कर देने वाले मुसलमान थे, जब पिता का देहांत हुआ तो उन्होंने रसूल (सल्ल०) के पास आकर निवेदन किया कि पिता को कफ़नाने के लिए हुज़ूर (सल्ल०) अपना 'जुब्बा' दे दें। रसूल (सल्ल०) ने सहर्ष उसका निवेदन स्वीकार कर लिया और अपनी कमीज़ उतार कर दे दी। फिर अब्दुल्लाह आकर कहने लगे कि पिता के जनाज़े की नमाज़ भी हज़रत (सल्ल०) ही पढ़ाएंगे। इसके लिए भी रसूल (सल्ल०) तैयार हो गये। उमर खत्ताब को मालूम हुआ तो उन्होंने हुज़ूर (सल्ल०) को रोकने के लिए यह कहा कि आपने इस मुनाफ़िक़ के कफ़नाने-दफ़नाने का निश्चय कर लिया है? क्या आपको याद नहीं कि उसने कैसे-कैसे मौक़े पर क्या-क्या कहा और किया? उसने हमें भी कैसा नुक़सान पहुंचाया। रसूल (सल्ल०) ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया कि 'मैंने एक फ़ैसला कर लिया है इसलिए अल्लाह ने मुझे हक़ दे दिया है।'

हुज़ूर (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अगर अल्लाह ने सत्तर से अधिक बार दुआ करने पर उनको क्षमा कर दिया तो मैं इसके लिए भी तैयार हूं और हुज़ूर (सल्ल०) ने उसकी जनाज़े की नमाज़ अदा की। (इब्ने हिशाम, भाग ४, पृ० १४७)

इस घटना के साथ ही क़ुरआन ने आदेश दिया कि हुज़ूर (सल्ल०) किसी मुनाफ़िक़ के जनाज़े की नमाज़ नहीं अदा करेंगे। मुनाफ़िक़ और क्रुद्ध हुए लेकिन अब्दुल्लाह बिन उबई की मृत्यु से उनकी रीढ़ की हड्डी टूट गयी। अब्दुल्लाह बिन उबई व्यक्तिगत शत्रुता के कारण मुनाफ़िक़ों का सरदार था और जब तक जीवित रहा हर प्रकार की गुप्त गतिविधियों में ही व्यस्त रहा। दूसरे मुनाफ़िक़ों के लिए भी वह 'केन्द्र' की हैसियत रखता था। अतः उसके देहांत के साथ मुनाफिक़ों की शक्ति समाप्त हो गयी और उनका संगठन छिन्न-भिन्न हो गया।

मुनाफ़िक़ आस्तीन का सांप थे, इसलिए कि प्रत्यक्ष में वे

मुसलमान थे। मुसलमानों के साथ मिल कर नमाज़ अदा करने में तथा अनेकों मश्विरों में सम्मिलित रहते थे, अतः समस्त रहस्यों से परिचित रहते थे और इसके साथ ही जब भी अवसर मिलता तो अपने विषैले दांतों से मुसलमानों को डंसने में भी उन्हें कोई संकोच न होता था। नबी (सल्ल०) उनके सिलसिले में तमाम जानकारी रखते थे, लेकिन आपने उनसे क्षमा-याचना का ही मामला किया।

इतने बयान ही से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम के पैग़म्बर अपने शत्रुओं से कैसा मामला करते थे? हुज़ूर (सल्ल०) के अन्दर और बाहर शत्रु थे। मक्के के मुश्रिकों और मदीने के यहूदी हुज़ूर (सल्ल०) की उम्मत से बाहर थे, लेकिन ये मुनाफ़िक़ आपके अन्दर के शत्रु थे, फिर भी हुज़ूर (सल्ल०) ने प्रत्येक के प्रति सहानुभूति तथा क्षमा याचना से काम लिया। हुज़ूर (सल्ल०) ने उस समय तक उदारता दिखायी, जब तक कि किसी ने क्षमा का द्वार अपने ऊपर 'स्वयं' ही नेबन्द कर लिया हो।

क्या दुनिया के किसी बादशाह या सुधारक से ऐसा उदारहण मिल सकता है?

—०—